अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का आलोचनात्मक मूल्याङ्कन

एम० फिल० (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध

शोध- निर्देशक

डॉ० सोम प्रकाश सुधीश

शोधकर्त्ता

आलोक कुमार चतुर्वेदी

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नयी दिल्ली–110067

जुलाई-1993

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110067

16 जुलाई, 1993

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री आलोक कुमार चतुर्वेदी द्वारा प्रस्तुत "अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का आलोचनात्मक मूल्यांकन" शीर्षक लघु शोध-प्रबन्ध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा किसी अन्य विश्वविद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है। यह श्री आलोक कुमार चतुर्वेदी की मौलिक कृति है।

केन्द्र-अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली - 110067

एस० पी० सुधेश
शोध-निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली - 110067

GRAM : JAYENU TEL. : 667676, 667557 TELEX : 031-73167 JNU IN

प्राक्कथन

आधुनिक हिंदी साहित्य की विशद् गद्यात्मक परिव्याप्ति में एक निरपेक्ष विधा के रूप में स्वीकृत `यात्रा-वृत्तांत ` वांछित आलोचकीय ध्यानाकर्षण से सर्वथा मुक्त है । संपूर्ण अज्ञेय-साहित्य को एक सुर में विश्लेषित कर डालने की स्पर्धा में आलोचकों की स्थूल और आंशिक दृष्टि अज्ञेय के यात्रा-साहित्य के यथेष्ट और अपेक्षित मूल्यांकन में सहायक कम, भ्रामक अधिक सिद्ध होती है । अज्ञेय के यात्रा-साहित्य पर केन्द्रित प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध इसी दिशा में एक अकिंचन प्रयास है, जिसमें यायावर की प्रामाणिक यात्रावृत्तात्मक कृतियों `अरे यायावर रहेगा याद ?` और `एक बूंद सहसा उछली` के साथ ही उसके व्यक्तित्वव्यंजक निबन्धों में संयोजित यायावरी से प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: जुड़े कतिपय वृत्तों का भी आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है ।

कुल छ: अध्यायों में निष्पन्न इस लघु शोध-प्रबन्ध का पहला अध्याय विभिन्नवर्णी यात्रा-साहित्य के इतिहास पर विहंगम दृष्टि के साथ ही यात्रा-साहित्य के मूलभूत सैद्धान्तिक पक्षों पर यथेष्ट प्रकाश डालता है । शोध-संबन्धी आधारग्रन्थों का आलोचनात्मक परिचय दूसरे अध्याय में निदर्शित है । तीसरे अध्याय में यात्रावृत्तों का आधुनिक हिंदी साहित्य के अन्य अकाल्पनिक गद्यवृत्तों से भिन्नता और बांधे में आलोच्य यात्रा-साहित्य के अंतरंग सामग्री अर्थात् लेखक द्वारा प्रतिपादित विचार-शृंखला को विश्लेषित किया गया है । पांचवां अध्याय अज्ञेय के यात्रावृत्त के कलात्मक उत्कर्ष और छठा उपसंहार से संबद्ध है ।

प्रयाग विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के प्रवक्ता डा० रामकमल राय से पत्राचार के माध्यम से प्राप्त औपचारिक परामर्श लेखन की प्रक्रिया में अन्यतम सिद्ध हुआ है । उनके प्रति मैं अंत:करण से आभारी हूं । प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध मेरे परमश्रद्धेय गुरुवर, शोध-निर्देशक डा० सुधेश के ही स्नेहिल मार्गदर्शन का परिणाम है, जिनसे प्राप्त शब्दातीत सहयोग के लिए शिष्यवत् मैं सदैव आभारी और श्रद्धावनत रहूंगा । अंतत: बहुत दूर और देर तक प्रभावित करने वाले मेरे अभिन्न संवेदनाप्रवण मित्र `केका` की अज्ञेय के `आलोक-कुआ अपनापन` रूपी आत्मीय उष्मा अंतरंग प्रेरणा के समकक्ष ही ठहरती है ।

आलोक कुमार चतुर्वेदी

आलोक कुमार चतुर्वेदी

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय : पृष्ठभूमि 1 - 14

(1) यात्रावृत्तांत एक साहित्यिक विधा और उसके लक्षण

(2) हिंदी साहित्य में यात्रावृत्तांतों का स्थान

(3) अज्ञेय के साहित्य में उनके यात्रावृत्तांतों का स्थान और यात्रा-साहित्य के बारे में अज्ञेय के विचार

द्वितीय अध्याय : अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का परिचय 15 - 56

(1) अरे यायावर रहेगा याद ?

(2) एक बूंद सहसा उछली

(3) जन जनक जानकी

(4) अन्य फुटकल यात्रावृत्त

(क) सब रंग और कुछ राग
(मार्गदर्शन)

(ख) कहां है द्वारका
(कहां है द्वारका)

(ग) छाया का जंगल
(छाया का जंगल)

पृष्ठ संख्या

तृतीय अध्याय : अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का वर्गीकरण 57 - 71

(1) बहिर्मुखी अथवा अन्तर्मुखी
(2) यात्रावृत्तांत अथवा संस्मरण
(3) यात्रावृत्तांत अथवा आत्मकथा
(4) यात्रावृत्तांत अथवा रिपोर्ताज

चतुर्थ अध्याय : अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का प्रतिपाद्य 72 - 94

(1) व्यक्ति-स्वातंत्र्य की खोज
(2) मानवतावादी स्वर
(3) सांस्कृतिक चेतना
(4) दार्शनिक चिंतन

पंचम अध्याय : अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का कलात्मक पक्ष 95 - 105

(1) विवरण का अभाव
(2) आत्माभिव्यंजना का आग्रह
(3) काव्यात्मकता
(4) भाषा की नवीनता

षष्ठ अध्याय : उपसंहार 106 - 112

:

ग्रंथानुक्रमणिका 113 - 117

परिशिष्ट `क` : आधार ग्रंथों की सूची

परिशिष्ट `ख` : सहायक ग्रंथों की सूची

परिशिष्ट `ग` : पत्रिकाओं की सूची

o

प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि

(1) यात्रावृत्तांत एक साहित्यिक विधा और उसके लक्षण

(2) हिंदी साहित्य में यात्रावृत्तांतों का स्थान

(3) अज्ञेय के साहित्य में उनके यात्रावृत्तांतों का स्थान और यात्रा-साहित्य के बारे में अज्ञेय के विचार

पृष्ठभूमि

(1) यात्रावृत्तांत एक साहित्यिक विधा और उसके लक्षण

सृष्टि में चतुर्दिक फैले हुए जगत के अनुपम सौंदर्य-वैचित्र्य की आश्चर्य-मयी परिव्याप्ति में मुक्त और निस्संग भाव से विचरने वाले यात्री साहित्यिक यायावरी के पोषक होते हैं जिनमें प्रधानत: साहसिक जिज्ञासा, प्राकृतिक सम्मोहन और भौगोलिक आकर्षण आदि वर्तमान रहता है । 'सौंदर्य बोध की दृष्टि से उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करने वाले यायावर एक प्रकार से साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जा सकते हैं और उनकी मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा-साहित्य कहा जा सकता है ।'[1]

आवश्यकतानुसार यात्रा-विवरण के स्थूल प्रस्तुतीकरण मात्र से न तो कोई साहित्यिक यायावर हो सकता है और न ही यात्रा-साहित्य की सत्ता ही संभव है । प्रमाण के क्रम में विभिन्न आकर्षक बिंदुओं की सृजनशील मन की दुर्निवार प्रेरणा से संपृक्त संवेदनशील अभिव्यक्ति से ही यात्रा-साहित्य सम्मुख आता है ।

यात्रा अनुभव-समृद्धि का एक व्यापक उपादान है । यात्रावृत्त का उपजीव्य

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - साहित्य कोश, डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 512

वास्तविक और अनुभवगत प्रसंग ही होता है, 'क्योंकि सर्जनात्मकता की जैसी समूची निष्पत्ति कविता, उपन्यास जैसे कला माध्यमों में होती है, वैसी इन अकाल्पनिक गद्यवृत्तों में नहीं ।'[1] मुख्यत: वास्तविक घटनाओं पर केन्द्रित होने के कारण यात्रावृत्त में परंपरागत अर्थ में कल्पना का योग बहुत कम रहता है ।'[2] अत: यात्रा-वृत्त के साहित्यिक निर्धारण में मार्मिक सर्जनात्मकता स्वत: रेखांकित हो जाती है ।

भ्रमण के दौरान स्थूलत: सभी को अशीष्ती हुई चलने वाली यात्री की दृष्टि विभिन्न दृश्यों से अभिसिंचित होती है । पर ऐसी रटीली अभिव्यक्ति से यात्रा-वृत्त की मार्मिक निर्मिति संभव नहीं । यात्रा का जो मूल्यांश यात्री की मानसिकता को उद्वेलित करता है या जिस लोमहर्षक दृश्य में उसकी सत्ता पर्यवसित होती है, उन्हीं बिंदुओं को उसकी रचनाधर्मिता मानसिक संवेदक की स्थिति में ग्रहण कर अनुभूत सत्य के रूप में अभिव्यंजित करती है । अत: 'वह अपनी यात्रा को मानसिक प्रतिक्रियाओं के रूप में ही ग्रहण करता है ।'[3]

यात्रा साहित्य में स्थान स्वत: प्रधान हो जाते हैं । यात्रा में मिलने वाले पात्र, उनका व्यक्तित्व, इतिहास, कला और संस्कृति आदि के तमाम उपकरण भी इसमें स्वयमेव समाहित हो जाते हैं । प्राकृतिक नयनाभिराम दृश्य,

---

1. प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 98
2. वही, पृ० 98
3. धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - साहित्यकोश, डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 512

सुरम्य वनखण्डी, नदी-नाले, पर्वत, स्मारक, भग्नावशेष, मंदिर-मस्जिद और यात्रा में आये विभिन्न उल्लेखनीय उपकरणों की वस्तुनिष्ठता यात्री को आत्माभिव्यक्ति से बचाती है । वैयक्तिक अभिव्यक्ति की प्रधानता की परिणति यात्रा-साहित्य में नहीं, बल्कि आत्मचरित या आत्म-संस्मरण में ही संभव है । इसीलिए `अपने को केन्द्र में रखकर भी प्रमुख न होने देना साहित्यिक यायावर का कर्तव्य है ।`[1]

स्वयं `घुमक्कड़` शब्द से एक प्रकार का फक्कड़पन, मस्ती और लापरवाही व्यंजित होती है । अथक घुमक्कड़ों की उद्दाम साहसिकता उन्हें योजनाबद्ध तरीके से यात्रा के लिए उर्जस्वित नहीं करती, बल्कि निरुद्देश्य भटकने वाली दृष्टि से ही उनकी साहित्यिक यायावरी निष्पन्न हो पाती है । पर इस निरुद्देश्य भटकाव में भी जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण निहित रहता है । महापंडित राहुल के `जिसने एक बार घुमक्कड़ धर्म अपना लिया, उसे पेंसन कहां ; उसे विश्राम कहां ?` या देवेश चन्द्र दास के `मैं अनदिष्ट पथ पर बाहर निकल आया हूं ` या अज्ञेय के `यायावर को भटकते चालीस बरस हो गये` आदि वाक्य भले ही निरुद्देश्य घुमक्कड़ी और फक्कड़पन को सम्मुख लाते हों, पर जब देवेन्द्र सत्यार्थी `मैं जीवित मानव का पता लेता हूं ` संप्रेषित कर यात्रा का आह्वान करते हैं, तब जीवन के प्रति रागात्मकता की संपुष्टि हेतु किसी साक्ष्य की आवश्यकता नहीं रह जाती । इस चराचर क्षेत्र के दिग्दर्शन की अदिकल दर्शनेच्छा और फक्कड़पन ही यात्री का सच्चा पाथेय है ।

परस्पर सौहार्द के छद्मदिग्दर्शकों की राजनीतिप्रेरित यात्राओं या बौद्धिक वाग्विलास और तमाम भौतिक प्रलोभनों से की गयी यात्राओं से वह साहित्यिक

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा - साहित्यकोश, डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 512

अस्मिता द्योतित होती है जो अपनी समूची नैष्ठिक निष्पत्ति में 'समता की प्रशस्ति और संस्कृतियों तथा प्रजातियों की अक्षुण्ण संगम है ।'[1] यात्रा की दृष्टि से अनुकूल भारतीय भौगोलिक भूमि पर सुदूर अतीत में विभिन्न देशों से धार्मिक, राजनीतिक, व्यावसायिक, सांस्कृतिक आदि दृष्टियों से संपन्न यात्राओं को प्रश्रय मिलता रहा है । 'फाहियान, ह्वेनसांग, इत्सिंग, इब्न बतूता, अलबरूनी, मार्कोपोलो, वर्नियर और टैवर्नियर आदि प्रसिद्ध घुमक्कड़ों की यात्राओं से यह स्वत: प्रमाणित हो जाता है ।'[2] भारतीय धर्म और संस्कृति का सुदूर और समीपवर्ती देशों में प्रचार-प्रसार भी ऐसी ही पावन यात्राओं का परिणाम जान पड़ता है । सोद्देश्य यात्राएं अर्थहीन यायावरी नहीं । सोद्देश्य यात्राओं के मूल में व्यष्टि और समष्टि के सामंजस्य की मधुकरी वृत्ति होनी चाहिए, न कि वर्तमान की भांति खून में बसी हुई जयसिंह की भावनाओं की तांडवी-वृत्ति ।

भावावेश, मस्ती, फक्कड़पन आदि घुमक्कड़ों के सामान्य लक्षण हैं । 'सब ठाठ धरा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा' वाली मस्ती से ही सच्ची यात्रा संभव है ।'[3] यात्रा के क्रम में वैयक्तिकता का परिहार और दूसरों से पहचान से अनुप्राणित यायावरों की निरीक्षणशीलता और उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति से यात्रावृत्त संभव है तथा ऐसे ही यात्रावृत्त-यात्रियों से मानवता की सही संपृक्ति भी ।

----

1. डा० ओमप्रकाश अवस्थी, अज्ञेय गद्य में, पृ० 105
2. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - साहित्यकोश, डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 512
3. डा० ओम प्रकाश अवस्थी, अज्ञेय गद्य में, पृ० 104

(2) हिंदी साहित्य में यात्रा-वृत्तांतों का स्थान

ऐतरेय ब्राह्मण का `चरैवेति` मंत्र वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध यात्राओं से संबन्धित उपदेशों का साक्ष्य प्रस्तुत करता है । कालिदास की अनूठी प्राकृतिक अभिव्यंजना से उनकी यायावरी मनोवृत्ति सम्मुख आती है । बाण की `हर्षचरित` और `कादम्बरी` उनकी अथक घुमक्कड़ी के स्वयं ही बेजोड़ प्रमाण हैं । पर आधुनिक यात्रा-साहित्य में भाषिक सर्जनात्मकता और सूक्ष्मतर संवेदन का जो अपेक्षित सामंजस्य परिलक्षित होता है, वह प्रारंभिक यात्रा-साहित्य में मूलत: परिचयात्मकता और स्थूल प्रस्तुतीकरण के कारण उपेक्षित रहा है ।

यात्रा-साहित्य की क्रमिक विकसनशीलता में शैली और रूप आदि का सूक्ष्म विभाजन भी उपलब्ध है । आरंभिक यात्रा-साहित्य मूलत: परिचयात्मक और सूचनात्मक रहे हैं । तत्संबन्धी वर्णनात्मकता में यात्रा-वृत्तांत `बाल सुलभ उल्लास और उत्साह से ओत-प्रोत भी ।`[1] सामान्यतया विदेश-भ्रमण ही यात्रा-साहित्य का विषय बनते थे । स्वदेश की मिट्टी उपेक्षित रहती थी । पर कालक्रम में स्वदेशी भावभूमि की उपेक्षा भी प्रतिष्ठित हुई ।`यात्रा साहित्य के इतिहास में यात्रा क्रमश: बाहर से अन्दर भी उन्मुख हुई और वृत्तकार आकार से अंतरंग तत्व की ओर उन्मुख हुए ।`[2]

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - हिंदी साहित्य, तृतीय खण्ड, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अन्य गद्य रूप, पृ० 546
2. वही, पृ० 546

बेजोड़ यायावरी के पर्याय और अप्रतिम घुमक्कड़ महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा सृजित परिमाण और वैविध्य दोनों ही दृष्टियों से समृद्ध यात्रा-साहित्य में भी परिचयात्मकता और इतिवृत्तात्मकता द्रष्टव्य है । पर `मेरी लद्दाख यात्रा`,`लंका यात्रावलि`,`मेरी तिब्बत यात्रा`, `यात्रा के पन्ने`, `जापान`,`ईरान` आदि यात्रा-वृत्तान्तों में इनकी व्यापक दृष्टि समाज, इतिहास, संस्कृति आदि को समेटती चलती है जिस में भौगोलिक आकर्षण, भाषिक प्रवाह और शैली की रोचकता रेखांकित होती है ।

साहित्य में जिस संपूर्णता की अनुगूंज किसी न किसी रूप में शुरू से वर्तमान रही है, उसकी अभिव्यक्ति यात्रा-साहित्य में भी क्रमशः आंशिक या तार्किक रूप से होती रही है । `कुछ यात्रियों का उद्देश्य देश-विदेश के व्यापक जीवन को उसके संपूर्ण परिपेक्ष्यों में उभारना रहा है ।`[1] यह संपूर्णता अद्यावधि साहित्य में कहीं-कहीं दीख पड़ने वाला पलायनवादी कवच नहीं, बल्कि इसके व्यापकत्व में देश की प्रकृति और संस्कृति की समन्विति और सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थितियों पर व्यक्तिगत विचार निहित हैं । इन घुमक्कड़ों के यहां मार्ग में पड़नेवाले विभिन्न तत्वों, अंशों आदि के स्थूल वर्णनाग्रह के स्थान पर आत्मीय और भावात्मक प्रतिक्रियाओं से अनुस्यूत संबन्धित स्थानों की जीवन-पद्धति भी द्रष्टव्य है । इस कोटि में सत्यनारायण कृत `आवारे की यूरोप यात्रा`, जगदीश चन्द्र जैन कृत `चीनी जनता के बीच`, गोविन्द दास कृत `सुदूर दक्षिण-पूर्व ` आदि कृतियां उल्लेखनीय हैं ।

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - साहित्यकोश, डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 513

संस्कृतिमूलक दृष्टि के केन्द्र में मानवीय करुणा निहित होती है । `कलकत्ता से पीकिंग` और `सागर के लहरों ` में भगवतशरण उपाध्याय की सांस्कृतिक दृष्टि मानवीय सहानुभूति को सम्मुख लाती है । मदंत आनंद कौसल्यायन की `आज का जापान` और अमृतराय की `सुबह के रंग` में यदि एशियाई संस्कृति की एका की जिज्ञासा प्रबल है तो यशपाल कृत `लोहे की दीवार के दोनों ओर ` में सोवियत संघ और अन्य पूंजीवादी देशों का तुलनात्मक आख्यान है । `दिनकर` और प्रभाकर माचवे क्रमश: यूरोप और अमेरिका पर मुग्ध हैं । श्रीनिधि की `शिवालिक की घाटियों ` में विरल प्राकृतिक सौंदर्य अप्रतिम है । `यात्रा-साहित्य में संस्मरणों की अन्तर्भुक्ति होती है ।`[1] `पैरों में पंख बांध कर` और `हवा पर` में रामवृक्ष बेनीपुरी ने और `तूफानों के बीच` में राहुल राघव ने ऐसे ही तत्वों को अपने यात्रा साहित्य में संजोया है । विदेश-गमन के लिए सुलभ होते गये अवसरों से यात्रा-साहित्य-निर्मिति की त्वरा में उत्तरोत्तर दृढ़ता तो आयी पर विदेशी भाव-भूमि से आक्रांत होने के कारण देशी आत्मगौरव की छवि नेपथ्य में ही बनी रही । फलस्वरूप आंशिकता की कुंडली कायम रही ।

अज्ञेय ने यात्रा-साहित्य में निहित इस आंशिकता का अतिक्रमण किया जिसका `अरे यायावर रहेगा याद ?` प्रत्यक्ष प्रमाण है । देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने यात्रा-साहित्य में लोक गीतों की भूमिका को मर्यादित किया है । `धरती गाती है` और `रथ के पहिये` में एक ओर सत्यार्थी का यायावर लोकगीतों के माध्यम से विभिन्न प्रदेशों और उनकी संस्कृतियों में एका की तलाश में है तो दूसरी ओर देवेश दास अपने यात्रा साहित्य में बंगाल के ताल और राजस्थान

---

1. डा० कमलेश्वर शरण सहाय, `हिंदी का संस्मरण साहित्य, पृ० 50

की मरुभूमि में भावनात्मक सामंजस्य दर्शाते हुए स्वदेश की मिट्टी की गंध बिखेरते हैं ।`[1] `अरे यायावर रहेगा याद ?` की विभिन्न सांस्कृतिक स्तरों की भाव-उर्जा, निष्ठा, निरीक्षणशीलता पाठक को सहज-संवेद्य बना देती हैं । `एक बूंद सहसा उछली` लेखक के ज्ञान में संवेदन और संवेदन के ज्ञान में नहायी बुद्धि-उर्जा से पटी पड़ी है ।

डा० कमलेश्वर शरण सहाय ने `1883 में बनारस से प्रकाशित रामचरन कवि कृत `बृजयात्रा` को प्रथम प्रामाणिक यात्रा-वृत्त माना है ।`[2] भारतेन्दु ग्रंथावली` में संकलित भारतेन्दु की `सरयू पार की यात्रा`,`वैद्यनाथ की यात्रा` और `जनकपुर की यात्रा` में जिंदादिली और हिंदी भाषा का अपरिपक्व स्वरूप विशेष रूप से सम्मुख आता है ।`प्रतापनारायण मिश्र की `कन्नौज में तीन दिन` को आधुनिक ढंग से वर्णित हिंदी का प्रथम यात्रा-वृत्त`[3] भले ही मान लिया जाय, पर आधुनिक अर्थ में विविधतामूलक और गंभीर कलात्मक कृति यह नहीं ठहरती । यात्रा का लक्ष्य महत्वपूर्ण होने से, जैसा कि भारतेन्दु के यहां वर्तमान है, यात्रा-साहित्य महत्वपूर्ण नहीं हो सकता । किसी भी साहित्यिक कृति की उपादेयता उसकी रचना प्रक्रिया, भाषिक-विधान और संघटनात्मक संपूर्णता में ही संभव है ।

परिचयात्मकता और सूचनात्मकता के बाद देशी आत्मविश्वास को निखारने वालों में रघुवंश और मोहन `राकेश` उल्लेखनीय हैं । इस बिंदु पर एक

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - हिंदी साहित्य, तृतीय खण्ड, डा० राम-स्वरूप चतुर्वेदी, अन्य गद्य रूप, पृ० 547
2. डा० कमलेश्वर शरण सहाय, हिंदी का संस्मरण साहित्य, पृ० 148
3. वही, पृ० 148

और जहां प्रभाकर द्विवेदी की `पार उतरि कहं जइहौं` में ठेठ गंवई मन:-स्थिति रूपायित हुई है, वहीं दूसरी ओर रघुवंश ने `हरी घाटी` में बिहार के छोटानागपुर इलाके की बंजर चोटियों और घाटियों में भी प्रीतिकर शैल्पिक प्रयोग और सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंशों के समन्वित चित्रण के कारण जान डाल दी है । पर यहां भी पाश्चात्य सम्मोहन की आक्रांति घटती नहीं । निर्मल वर्मा की `चीड़ों पर चांदनी` इसका प्रमाण है । यात्रा-साहित्य लेखन में बनारसीदास चतुर्वेदी, मन्मथनाथ गुप्त, अक्षयकुमार जैन, हरिदत्त शर्मा, डा० नगेन्द्र, प्रदीप पंत, कन्हैयालाल नंदन आदि नाम उल्लेखनीय हैं ।

इस विधा की अद्यावधि विकसनशीलता के बीच में सत्यदेव परिव्राजक, सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, सेठ गोविंददास आदि घुमक्कड़ों की कतिपय उल्लेखनीय कृतियों से साक्षात्कार होता है । यहां प्राकृतिक सौंदर्य, धार्मिक प्रेरणा और विदेश-यात्राकर्षण आदि सभी कुछ की सक्रियता दिखाई देती है । यात्रा-साहित्य भले ही भारतीय साहित्य में बहुत पहले से अस्तित्वमान रहा हो, पर इसे सुव्यवस्थित आधार पाश्चात्य साहित्य से संपर्क के पश्चात् ही मिला । `आधुनिक हिंदी साहित्य में यह साहित्यिक रूप भी कई अन्य रूपों के साथ पाश्चात्य साहित्य के संपर्क में आने के बाद ही विकसित हुआ है ।`[1]

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - साहित्यकोश, डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 512

(3) अज्ञेय के साहित्य में उनके यात्रावृत्तांतों का स्थान और यात्रा-साहित्य के बारे में अज्ञेय के विचार

अज्ञेय साहित्य का विराट भारतीय मेधा की बौद्धिक और सृजनात्मक ऊँचाइयों का एक चुनौतीपूर्ण और गौरवमयी शीर्ष बिन्दु है । हिंदी साहित्य की अधिकांश विधाओं की समर्थता और समृद्धि की प्रतीक अज्ञेय की रचनाधर्मिता में महान कवि, मूर्धन्य कथाकार, प्रखर आलोचक, अद्वितीय शिल्पी, अथक यायावर और आस्थावान चिंतक की कतिपय मौलिक संकल्पनाएं विद्यमान हैं । व्यक्तिवाद, कलावाद और आत्मनिष्ठा आदि के पुरस्कर्ता बड़बोले आलोचकों ने भी भारतीयता की पहचान के क्रम में लिखित के साथ वाचिक परंपरा के भी आग्रही अज्ञेय की स्वाधीन चिंतन-पद्धति को मान्यता दी है ।

सतत प्रयोगशीलता के आग्रही अज्ञेय के यात्रा-साहित्य में प्रवृत्त होने से इस दिशा में एक नया मोड़ आया । भाषिक सर्जनात्मकता, देशी आत्मगौरव और सूक्ष्मतर संवेदन आदि विभिन्न उपादानों के माध्यम से उन्होंने यात्रा-साहित्य के अंतरंग तत्व को एक व्यवस्थित संगति दी । जीवन की संपूर्ण अभिव्यक्ति स्थायी और कालजयी साहित्य की अनिवार्य शर्त है । अज्ञेय के यहाँ यात्रा जीवन का चिरंतन पथ है और समग्र जीवन की अभिव्यक्ति का माध्यम भी । कुछ ऐसे यायावर हैं जो अपने देश की आत्मा का साक्षात्कार करते हैं, देश में बिखरे हुए इतिहास, संस्कृति, समाज को अपनी अनुभूति का अंग बनाकर अभिव्यक्त करते हैं । उनके यात्रा-साहित्य में महाकाव्य और उपन्यास का विराट तत्व, कहानी का आकर्षण, गीतिकाव्य की मोहक भावशीलता,

संस्मरणों की आत्मीयता, निबन्धों की मुक्ति - सब एक साथ मिल जाती है ।`[1] अज्ञेय की `अरे यायावर रहेगा याद ?` उत्कृष्ट यात्रा-साहित्य की इसी कोटि में एक उल्लेखनीय कृति है । इन्होंने इतिवृत्ति की तुलना में संस्मरणात्मक स्तर पर संस्कृति के विविध पक्षों को बड़ी सजगता एवं निष्ठा से अंकित किया है ।

अज्ञेय के यात्रा-साहित्य की कलात्मक उपलब्धि में भाषिक-सर्जनात्मक-गांभीर्य का ओज बिखरा पड़ा है । इनके यहाँ भाषा की तनावरहित औपचारिकता नहीं, बल्कि एक आकर्षक गूढ़ता और गंभीरता द्रष्टव्य है । भाषा-संबन्धी सजगता उनके भाषिक-विधान को दुरूह नहीं बनाती, कृति की संघटना को बेजोड़ बनाती है ।` अज्ञेय वस्तुत: हिन्दी के उन विरल लेखकों में हैं जिन्होंने मानवीय सर्जनात्मकता के लिए भाषा को अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ माना ।`[2] अज्ञेय जैसे सुधी और अधीत साहित्यकार के यहाँ भाषिक तनाव है, पर इसी तनाव के कारण `अरे यायावर रहेगा याद ?` के समर्थ सर्जक और `एक बूंद सहसा उछली` के प्रौढ़ चिंतक के क्रमश: सर्जना के भाषिक-विधान और चिंतक के भाषिक-विधान के बीच आश्चर्यजनक साम्य उत्पन्न होता है ।

`भ्रमण या देशाटन केवल दृश्य परिवर्तन या मनोरंजन न होकर सांस्कृतिक दृष्टि के विकास में भी योग दे यही उसकी वास्तविक सफलता होती है`।[3]

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - साहित्यकोश, डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 513
2. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 103
3. अरे यायावर रहेगा याद ? भूमिका

`यह पुस्तक मार्ग-दर्शिका नहीं है ।`[1] यद्यपि अज्ञेय ने इलियट की `सृष्टा-भोक्ता-पृथक्ता` संबन्धी अवधारणा को कतिपय बिंदुओं पर रेखांकित किया है, तथापि उनके यात्रा साहित्य में व्यक्तिगत जीवन की अंतरंगता की झलक भी सुरक्षित है । `अज्ञेय ने यायावर जीवन बिताया, दिल्ली को घर तो बनाया, मगर आत्मानुभव का एकांतिक संसार नहीं संजोया और विभिन्न प्रकार के परिवेश और पात्रों के संपर्क से नये-नये अनुभव संजोये ।`[2] विविधता-मूलक जीवनानुभव की मधुकर वृत्ति जीवन-प्रेम तक पहुंचाती है और जीवन-प्रेम मानवीय दृष्टि तक ।

अचानक हल्के असबाब के साथ घुमक्कड़ी के लिए निकल पड़ने को ही अज्ञेय सच्ची यायावरी कहते हैं । योजनाबद्ध तरीके से की गयी यात्रा से यायावर का `बहता पानी निर्मला` से सुर नहीं सधता ।`फालतू असबाब से छुट्टी पाते हुए सहज भाव से यात्रा करना सीखते चलना ही मेरा उद्देश्य है - विदेशाटन में ही नहीं, जीवन यात्रा में भी ।`[3] अनावश्यक सामानों की मुक्ति से प्राप्त हल्केपन की अनुभूति यायावर को निरुद्देश्य घुमक्कड़ी के लिए प्रेरित करती है, मस्त और लापरवाह बनाती है । अज्ञेय के `यायावर को

---

1. एक बूंद सहसा उछली, निवेदन
2. राजीव सक्सेना, कर्म प्रेरणाओं के सूक्ष्म विश्लेषक, `रविवार`, अंक 46, पृ० 51
3. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 4

भटकते चालीस बरस हो गये, किंतु इस बीच न तो वह अपने पैरों तले घास जमने दे सका, न ठाठ जमा सका है, न क्षितिज को कुछ निकट ला सका है । ... उसके तारे छूने की तो बात ही क्या । ... यायावर ने समझा है कि देवता भी जहां मंदिरों में रुके कि शिला हो गये, और प्राण संचार की पहली शर्त है गति ; गति ; गति ।'[1] इस वाक्य से मानव-जीवन की गति भी प्रकारान्तर से रेखांकित होती है । इसी बिंदु पर आस्था, तात्विकता और मौलिकता आदि का उन्नयन भी मूर्त-मान हो उठता है ।

यात्रा के रूप में संजोयी हुई स्मृति को अज्ञेय ने 'कच्चा-माल' कहा है । 'जो कच्चा माल मुझे मिला, उससे कुछ निर्माण करने में मुझे बरसों भी लग सकते हैं, लेकिन यह तो मेरी आभ्यांतर यात्रा की बात है ।'[2] तात्पर्य यह कि स्मृति के रूप में संजोये हुए कच्चे माल को पकाने में लगने वाला समय लेखकीय क्षमता पर निर्भर है और यह लेखक की आंतरिक यात्रा है । 'ऐसी पुस्तकों में प्रस्तुत ब्यौरा एक व्यक्ति की यात्रा का ब्यौरा होता है, और वह यात्रा जितनी बाहरी होती है, उतनी ही भीतरी भी । यात्रा का विवरण जितना स्थूल भू-भाग से संबद्ध होता है, उतना ही सूक्ष्म मानसिक भूगोल से भी ।'[3] अत: यात्रा में यायावर की बुद्धि और हृदय दोनों साथ निकलते हैं ।

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? पृ० 2
2. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 198
3. अरे यायावर रहेगा याद ? भूमिका

द्वितीय अध्याय

अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का परिचय

(1) अरे यायावर रहेगा याद ?

(2) एक बूंद सहसा उछली

(3) जन जनक जानकी

(4) अन्य फुटकल यात्रावृत्त

(क) सब रंग और कुछ राग
(मार्गदर्शन)

(ख) कहां है द्वारका
(कहां है द्वारका)

(ग) छाया का जंगल
(छाया का जंगल)

(1) `अरे यायावर रहेगा याद ?`

भारतीयता के तरल भूगोल की दृढ़ भित्ति पर केन्द्रित और स्वरचित कविता की अंतिम पंक्ति `अरे यायावर रहेगा याद ?` शीर्षक से संप्रेषित अज्ञेय का यह प्रथम यात्रावृत्त भारतीय यात्रानुभवों का एक मार्मिक आलेखन है, जिसका अंतरंग अवाक् विस्फारित सौंदर्य से अनुप्राणित है । `अरे यायावर रहेगा याद ?` के अधिकांश वृत्तों के संकलन और प्रकाशन में एक व्यापक अंतराल रहा है । कुछ यात्राएं पिछले महायुद्ध के पहले की थीं ;(पुस्तकाकार प्रकाशन - सन् `53 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली से)स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हुआ ।`[1] लेखन और प्रकाशन के इस अंतराल से `अरे यायावर रहेगा याद ?` में वर्णित भौगोलिक ढाँचे में भी आज अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं ।`पूर्वी अंचल में प्रशासनिक पुनर्संगठन से कई नये प्रदेश बन गये हैं - अरुणाचल, मेघालय, नागालैण्ड, मिजोरम... हिमालय में नयी सड़कों का जाल बिछ गया है और किसी जमाने की `मौत की घाटी` अब पक्की सड़कों के कारण साधारण सैरगाह बन गयी है ।`[2] आरंभिक यात्रावृत्त में वर्णित `परशुराम कुंड` पर भी प्राकृतिक सन्निपात हो गया है । `एक बड़े भूकंप के कारण वह पहाड़ ही धँस गया है जो ब्रह्मपुत्र का आवर्त बना कर परशुराम कुंड को आकार देता था ।`[3]

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - भूमिका
2. वही, भूमिका
3. वही, भूमिका

राज्य व्यवस्था का प्रशासनिक पुनर्संगठन और प्रकृति दोनों ही ने इस यात्रा-वृत्त के भूगोल पर अपने-अपने तरह से तुषारापात किये हैं ।

इस यात्रावृत्त के प्रथम संस्करण की पुस्तकाकार उपलब्धि में केवलसात वृत्त `परशुराम से तूरखुम`, `किरणों की खोज में`, `देवताओं के अंचल में`, `मौत की घाटी में`, `एलुरा`, `माफुली` और `बहता पानी निर्मला` ही संकलित थे जिसमें `एलुरा` को छोड़कर शेष छ: वृत्तों से देश की उत्तरी पूर्वी और उत्तरी पश्चिमी सीमा ही नपी । `एलुरा` से दक्षिण का स्पर्श मात्र हुआ, जबकि यायावर उत्तर-दक्षिण का छोर भी नापना चाहता था । `परशुराम से तूरखुम` की यात्रा से पूरब और पश्चिम के कुलाबे तो मिला लिये थे पर उत्तर-दक्खिन के छोर मिलाने की आकांक्षा को और प्रेरणा भी मिली थी । अंतत: वह यात्रा भी हो गयी ।... स्वेच्छा से निर्धारित पथ और गति से ![1]` दूसरे संस्करण में संकलित `सागर-सेवित, मेघ मेखलित` से यायावर ने उत्तर-दक्षिण की वांछित दूरी भी साध ली । इस प्रकार एक लंबी अवधि तक लेखक की स्मृति-चेतना में थिराते रहने वाले स्थान, दृश्य और तमाम संघात आज आठ स्वतंत्र वृत्तों में गूंथकर `अरे यायावर रहेगा याद ?` के रूप में सम्मुख हैं ।

`अरे यायावर रहेगा याद ?` का प्रारंभिक वृत्त `परशुराम से तूरखुम`, `एक टायर की राम कहानी` उपशीर्षक से निदर्शित है । वस्तुत: टायर की राम कहानी यायावर की ही राम कहानी है । यायावर के यहां `सृष्टि की सर्वोत्तम आकृति चक्र है ... देवताओं के समुद्र मंथन से जैसे सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि अग्नि की

----

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - भूमिका

की हुई, उसी प्रकार मानव-मन रूपी महासागर के मन्थन से जो श्रेष्ठ नवनीत प्राप्त हुआ, वह है चक्राकार की उद्भावना... ।`[1] इस प्रकार टायर की चक्राकृति को दार्शनिकता प्रदान कर यायावर इतिवृत्तात्मकता की मर्यादा-संगति को यह संप्रेषित कर प्रामाणिक बनाता है कि `वैष्णव भक्त जैसे राधा और कृष्ण के जीवन में अपने राग-विराग ढ़ाल देते थे, मैं अपने प्रतीक पुरुष को ही आधार बनाता हूं ।`[2] तात्पर्य यह कि वैष्णव भक्तों के यहां राधा और कृष्ण प्रतीकवत प्रयुक्त हुए हैं तो यायावर के यात्राख्यान के लिए गाड़ी का टायर ।

`साहित्यिक यायावर को एक अद्भुत आकर्षण अपनी ओर खींचता है ।`[3] यह अद्भुत आकर्षण एक विचारणीय सीमा तक प्राकृतिक आकर्षण ही है । ठेठ भौगोलिक और राज्यव्यवस्था संबन्धी घोर असामान्य स्थिति से जूझना, दलदल, पहाड़, नदी-नाले आदि को बेधड़क पार करना, बांस के मचान और रेल वैगन पर आनंद विभोर होकर यात्रा करना यायावरी की अद्भुत आकर्षणशीलता के कारण ही संभव है, क्योंकि `यायावर तो अजातशत्रु होते हैं ।`[4] `रात में ख़ैबर पार कोई नहीं जाता ।`[5] पर अजातशत्रु की निर्भीकता ही उसे रात में वहां जाने के लिए प्रेरित करती है । `परशुराम से तूरख़म में ` असम और असम से

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? पृ० 1
2. वही, पृ० 2
3. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - साहित्यकोश, डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 512
4. अरे यायावर रहेगा याद ? पृ० 62
5. वही, पृ० 62

पंजाब तथा ख़ैबर और ख़ैबर से कोहाट के बीच मार्ग में प्रतिफल टकराती हुई बेबाक प्राकृतिक कठिनाइयां एक अकिंचन यायावर के साथ ही फ़ौजी कानवाई में निकले एक सेनाधिकारी के मार्ग में आने वाली कठिनाइयां भी हैं ।

यद्यपि प्रकृति की लोमहर्षक तरलता इस यात्रावृत में अद्यांत व्याप्त है, पर `माकुली` का प्राकृतिक आकर्षण आत्यांतिक रूप से बेजोड़ है । इसका आरंभ ही प्राकृतिक अभिव्यंजना से होता है : `नागकेसर के फूल तब पूर्ण विकसित हो चुके थे, पंखुड़ियां झरने लगी थीं और केसर की मादक गंध छोटी-छोटी पहाड़ियों और उपत्यकाओं को लांघती हुई शून्य में फैल रही थी ।... बड़े-बड़े शुभ्र बादल बच्चों की तरह नाना प्रकार के जन्तुओं का रूप धरने की क्रीड़ा करते हुए आकाश के प्रांगण के पार निकल जाते थे । मंदिर श्रेणी के नीचे बिछे हुए सरोवर का नील विक्षुब्ध हो उठता था और मानो उसे परचाने के लिए किनारे के अशोक-वृक्ष के दो चार खिले फूल झर कर उस पार आ गिरते थे ... ।`[1] चाहे सुनसान बियाबान जंगल हो या रंग-बिरंगे फूलों की बगिया स्वसुविधा हेतु यायावर उसका नामकरण कर देता है ।जलंधर से चार किलोमीटर दूर एक बाग के प्रवेश-द्वार पर लगे मील के पत्थर पर चार मील टंका देखकर यायावर `चौमीला बाग` नाम रखता है । अनन्तर पुष्पित अमलतास के वृक्षों पर अभिभूत यायावर को `अमलतासी` नाम काँध जाता है ।` और यही नाम सबसे मधुर लगा और पीछे इतना सजीव हो आया कि अब भी अमलतासी को ही वह याद करता है ।`[2]

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 149
2. वही, पृ० 30

सैनिक अनुशासन के प्रति एक आस्थावान कार्मिक होकर भी यायावर की सहृदयता नेपथ्य में नहीं रहती, बल्कि साहित्यिक-संवर्द्धनात्मक मनोवृत्ति सतत जागरूक रहती है । राइडर हैगर्ड कृत उपन्यास में वर्णित `डेथ विल कम टु हिम स्विफ्टली ओवर द वाटर्स ` अर्थात् जल विस्तार के पार से उसका काल द्रुत गति से आयेगा, भविष्यवाणी`[1] से भयभीत बालक परिपक्व यायावरी में ही पानी से मानव के विविध संबन्धों को जान सका है क्योंकि `किरणों की खोज में ` की स्मृति पानी में जलचर प्राय हो जाती है ।`पानी कभी चंचल फेनोर्मिल, कभी निष्कम्प गंभीर ; कभी आकुल वाष्पायित, कभी कल-कल प्रपतित, कभी असंलग्न हिमवेष्टित नीरव... ।`[2]

इसी प्रकार प्राकृतिक सौंदर्य पर मात्र अभिभूत असाहित्यिक सैलानी `मनाली` को अपनी लेखकीय तूलिका से ऐसे नहीं रंग सकता -`हल्के सफेद बादलों से घिरी हुई मनाली ऐसी सोहाती थी मानो किसी आकाशवासी जौहरी ने धुनी हुई रूई में लपेट कर बढ़िया पन्ना रख दिया हो... जिस ओर बादल जरा खुलते थे, उसी ओर उनके अवगुण्ठन के बीच में से अद्भुती, `अज्ञात-यौवना` `हिमचोटियाँ` दीख जाती थीं । तब यह मालूम हुआ कि आकाशवासी जौहरी ने रुई से लपेट देना ही पर्याप्त नहीं समझा, पन्ने की रक्षा के लिए उसके सब ओर विराट् हिमशृंग ला खड़े किये हों ।`[3] असमी बंसवारियों में चलते हुए बैलगाड़ी

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 63
2. वही, पृ० 63
3. वही, पृ० 126

की चूं-चूं का जीवन की सरसराहट से समन्वित ध्वनि पर वह हठात् कह उठता है कि `मानो विस्तीर्ण हरियाला अंधकार अपने पूरक रक्ताभ आलोक की स्तुति में कोई मन्द-गंभीर छंद गुनगुना उठे ।`[1] घोर प्रकृति-प्रेमी के ऐसे ही साहित्यिक अभिव्यंजना-कौशल से इस कृति के कतिपय प्रसंग दीप्त हो उठे हैं ।

पर है यह स्थूलत: साहित्यिक अभिव्यंजना कौशल ही । साहित्यिक-उत्कर्ष या अपकर्ष के प्रति चिंतित-व्यथित दृष्टि नहीं । पर यायावर की चिंतना साहित्यिक स्थिति के सूक्ष्म विश्लेषण में भी प्रवृत्त होती है । ताजगंज के समीप दिवंगत मियां नजीर की उपेक्षित कब्र देखकर यायावर उद्धृत करता है कि `नजीर को गोकुल पुरे में अपने मदरसे पहुंचते-पहुंचते सांझ हो जाती है ; क्योंकि `तब रास्ते में लोग उन्हें रोक-रोककर उनसे दो बार बन्द सुना जाने का सफल आग्रह करते थे ।... एक वह दिन था जब कविता का स्वाभाविक उद्रेक राह चलते को खींचता था और फक्कड़ कवियों की बानी सीधे लोक-हृदय में बैठ जाती थी ; एक हमारा दिन है कि ट्रक हांकते धूल उड़ाते चले जा रहे हैं... हर मामले में टांग अड़ाते हैं ... किंतु उस लोक जीवन के आसपास भी नहीं फटकते जो वास्तव में जीवन का मूल-स्रोत है ।`[2] नजीर सरीखे कवियों की बानियों की लोकोन्मुख जगह अब साहित्य अकादमी पुरस्कारों से सम्मानित कवियों के प्रतिष्ठित प्रकाशनों से मुद्रित प्रतिनिधि कविता-संग्रहों ने हथिया ली है । नेपथ्य की गर्त में दबी वाचिक

DISS
O,152,1,N111:g(U,8)
152N3

----

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 157
2. वही, पृ० 28

TH- 4628

काव्य-परम्परा के प्रति करुण मोह यायावर की लोकोन्मुखता का पुख्ता प्रमाण है । कविता होती ही हृदयाभिव्यक्ति है । वर्तमान हृदयहीना कविता कामिनी पर यायावर के इस `हृदय से हृदय तक नहीं जाती वरन् एक मस्तिष्क की शिक्षा-दीक्षा के संस्कारों की नली से होकर कागज पर ढ़ाली जाती है, वहां से दूसरा मस्तिष्क अपने संस्कारों की नली से उसे फिर खींचता है,`[1] बेबाक और तीखी टिप्पणी को कोई ईमानदार और विशुद्ध लोकधर्मा साहित्यकार ही समझ सकेगा । यायावर की यही लोक-धर्मी दृष्टि यमुना किनारे सूर की लीला गायकी की स्थली भी देख सकी है `जहां अब उस स्थान को चिन्हित करने वाली कुछ बजरी-भर पड़ी है ।`[2]

कवयित्री ज़ेबुन्निसा की एक बड़ी सी कविता के साथ ही यायावर लोक-धड़कन में विद्यमान चनाबी तट पर उपजे हीर और रांझा, सोहनी और महीवाल की प्रेम-गाथा से संबन्धित कविता भी उद्धृत करता है । लोकगाथाओं के प्रति गीली भावभूमि रखने वाला यही यायावर अपने देश के कलाकारों की दुर्दशा पर भी द्रवित है । भारतीय चित्रकार कंवलकृष्ण, जो महापंडित राहुल के साथ तिब्बत गये थे, की साधना और रचना की उपेक्षा पर यायावर की सटीक टिप्पणी चित्रकारों और अन्य कलावंतों की वर्तमान दुर्दशा को दर्शाती है । `जहां चित्र के साथ पुराण नहीं तो कहानी तो अनिवार्यत:

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 28
2. वही, पृ० 28

चाहिए ही, वहां दृश्यालेख (लैण्डस्केप) की क्या कद्र होगी ; और जहां घर-गिरस्ती आबाद करना ही जीवन की सफलता हो, वहां इस भटक-भटक कर अनुभव-संचय और जीवन के रस-शोध को कौन महत्व देगा ।`[1]

भारतीय लोक पौराणिक आख्यानों और किंवदन्तियों से लेखक बहुत गहरे तक अभिसिंचित रहा है । जिस प्रकार हिंदी साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन से गंभीर और कलात्मक साहित्य के अध्येता लोकप्रिय साहित्य के अध्येताओं की तुलना में अपेक्षाकृत कम ठहरते हैं, उसी प्रकार `किंवदन्तियों में खोये रहने वालों की संख्या अधिक है अपेक्षा प्रामाणिक इतिहास के जानकारों के ।`[2] धार्मिक स्थान से जुड़े पौराणिक आख्यानों, मिथकों आदि को यायावर प्रसंगवशात् समेटता चलता है । जैसे सदिया से कुछेक मील दूर ब्रह्मपुत्र की कुंडिल नदी के बारे में -`प्रसिद्ध है कि इसी नदी के किनारे कुंडिनपुर की राजधानी थी और यहीं से रुक्मिणी को लेने कृष्ण आये थे ।`[3] इस संदर्भ में एक अन्य प्रसंग -`कथा है कि पिता की आज्ञा से मातृवध करने के पश्चात् परशुराम के मन में ग्लानि हुई ।... बहुत तपस्या करके भी जब उनके मन से पाप का कलुष न धुला तब एक दिन भगवान ने स्वप्न में दर्शन देकर उन्हें ब्रह्मपुत्र के इस कुंड में स्नान करने का आदेश दिया... कुंड में और फिर ब्रह्मपुत्र धारा के नीचे स्नान करके उन्होंने तपस्या की और

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 53
2. डा० ओमप्रकाश अवस्थी, अज्ञेय गद्य में, पृ० 107
3. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 6

पाप के बोझ से मुक्त हुए ।'[1]

यायावर पुराविद नहीं होते, फिर भी यायावर को जन्मना पुरा-तात्विक संस्कार प्राप्त है । 'तक्षशिला, नालंदा, सारनाथ - ये नाम यायावर के शरीर में पुलक उत्पन्न करते हैं किंतु इसलिए नहीं कि ये प्राचीन खण्डहर के नाम हैं, वरन् इसलिए कि ये सांस्कृतिक विकास के समष्टि के अनुभव पर आधारित जीवन की उन्नतर परिपाटियों के आविष्कार के कीर्तिस्तम्भ हैं ।'[2] समूचे देश में समष्टिवादी सांस्कृतिक विकास में उदात्त एका स्थापित करने वाले इन स्थानों के नाम से हिल्लोलित यही यायावर एक चित्रकार की अवांछित उपेक्षा पर यह सीख भी देता है कि इन चीजों का उचित स्थान समझना कुछ देना नहीं ; कुछ पाना है और उससे संस्कृत जीवन की गहरायी बढ़ती है ।'[3] गहरी पुरातात्विक पड़ताल यायावर की बौद्धिक-सांस्कृतिक दृष्टि को प्रामाणिक बनाती है । पुरातात्विक विश्लेषण के क्रम में तथा अन्यत्र सांस्कृतिक स्थल और संघातों के वर्णन में लेखक की इतिहास-निष्ठा भी प्रतिष्ठित होती चलती है । 'पेशावर संग्रहालय के बाहर भी जहां-तहां अवशेष हैं ; जिनके नामों से ही ऐतिहासिक महत्व का वक्र संकेत मिलता है । उदाहरणतया - पेशावर में ही गोर खत्री (खत्री की कब्र) है, वह कभी बौद्ध-विहार था, फिर हिंदू मंदिर रहा । इसी प्रकार लंडी कोतल के ऊपर एक लाल किला है, जिसे काफ़िर कोट कहते हैं - इसका

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 9
2. वही, पृ० 36
3. वही, पृ० 53

इतिहास ज्ञात नहीं, पर स्पष्ट ही यह गान्धार काल की स्मृति है ।`[1] इस बिंदु पर यायावर के शुद्ध इतिहास वर्णन का एक नमूना भी उल्लेख्य है ।`पेशावर के पास ही `शाहजी की ढेरी` में अनेक अन्य वस्तुओं के साथ एक कनिष्ककालीन मंजूषा भी मिली जिसमें बुद्ध के धातु संपुट थे ।... ग्यारहवीं शती के आरंभ में राजा जयपाल और युवराज आनंदपाल मुहम्मद गजनवी से पराजित हुए ।... सोलहवीं के आरंभ में बाबर उधर से आया और उसके बाद अकबर ने इस शहर का नाम दे दिया ।`[2]

यत्र-तत्र बिखरे पुरातात्विक अवशेषों से ही प्राचीन गौरव का पता चलता है, पर घोर व्यष्टिवादी प्रपंच में जकड़े इस समाज की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व की चीजों के प्रति घोर अनास्था स्पष्ट है । यह समाज तो स्वाधिकार की भौतिक और विलासिता की वस्तुओं को ही गौरव प्रदान करता है । `एलुरा` की एक गुफा में बुद्ध की एक अद्वितीय प्रतिमा देखकर यायावर मूर्ति शिल्पी के कौशल के बारे में लिखता है - `मूर्ति-शिल्प में शिल्पी केवल मूर्ति के अवयवों को नहीं देखता, यह भी ध्यान रखता है कि मूर्ति पर पड़नेवाला प्रकाश किस अंग को प्रकाशित करेगा, किस छाया से घुंघला कर देगा, मूर्ति-रचना में पत्थर के साथ-साथ आलोक-छाया का यह उपयोग मूर्तिकला का सूक्ष्म अंग है ।`[3] अंतिम दो यात्रावृत्तों `एलुरा` और `सागर-सेवित मेघ-मेखलित` में धार्मिक और पुरातात्विक आग्रह अपेक्षाकृत अधिक है ।

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 53
2. वही, पृ० 52
3. वही, पृ० 144

देश की भौगोलिक सीमा को निर्धारित करने वाली सीमा रेखाएं यायावर के लिए मर्यादा की विषयवस्तु हैं । `यह हमारे देश का मर्यादा पर्वत है (तूरुम पर्वत) ।`[1] पर मर्यादा और गौरव के ये स्थल आज कूट-नीति, युद्ध और तस्करी आदि के लिए उपयुक्त स्थान हो चले हैं ।

`सैकड़ों देवी-देवताओं और उनके मंदिर के कारण कुलू प्रदेश का नाम `देवताओं का अंकल` पड़ा है ।`[2] `दाना के दूसरी ओर पहाड़ के ढलान पर चीड़ के जंगल में हिडिम्बा देवी का मंदिर है - - - कहते हैं कि यहां हिडिम्बा देवी मनुष्य भून-भून कर अपना भोजन तैयार करती थी ।`[3] ऐसे मिथक और किंवदंतियां यहां भरपूर परिमाण में उपलब्ध हैं । लोकहृदय में अनुस्यूत विभिन्न मिथकों और किंवदंतियों में प्रवृत्त यायावर शब्दों के मूल में पैठ कर शाब्दिक अर्थवत्ता को भी प्रामाणिक बनाता है । `जोरहाट - नवगांव - गौहाटी` गौहाटी वास्तव में `गुवाहाटी` है - असमीया सुपारी (गुवाफल) की प्रसिद्ध हाट ।`[4] कूचबिहार नामक (छोटी सी सुंदर नगरी) से गुजरते हुए यायावर सोचता है -`नाम वास्तव में कोचविहार होना चाहिए, क्योंकि कोच जाति की राजधानी है ।`[5] `मनाली या मुनाली ने यह नाम मुनाल नामक पक्षी से पाया ।` इस प्रकार धार्मिक-पौराणिक आख्यानों, मिथकों, किंवदंतियों, लोक-कथाओं के वर्णन और शाब्दिक विवेचन-विश्लेषण आदि के माध्यम से यायावर की संस्कृतिनिष्ठा प्रमाणित होती है ।

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 58
2. वही, पृ० 117
3. वही, पृ० 123
4. वही, पृ० 16
5. वही, पृ० 19

परिचयात्मकता और स्थूल वर्णनात्मकता से संबद्ध कतिपय प्रसंग इस यात्रा-वृत्त को कहीं-कहीं इतिवृत्तात्मक भी बनाते हैं । जैसे -`जंगल पार करके पेड़ों के तने जोड़ कर बनाये हुए एक काठघर के नीचे ट्रक रुका ।`[1] भारतेन्दु के `सरयूपार की यात्रा` से तुलना वाले ऐसे वाक्य कम पर, हैं ।`किंतु ये कोरे वृत्तांत या यात्रा-वृत्त नहीं हैं, उनमें कुछ ऐसा जीवंत तत्व है जो उन्हें चिरंतन बना जाते हैं ।[2] `किरणों की खोज में एक वैज्ञानिक प्रोफेसर को झील का पूरा पानी उलीच देने की तन्मयता और तर्कहीन आस्था में व्यस्त देखकर यायावर अभिभूत हो उठता है । यह जड़ आस्था ही है, अत: वह अंतत: टूटती भी है । पानी उलीचने और थककर हार जाने के बीच की अवधि में यायावर के सम्मुख जीवन के विश्वास और आस्था के मूल्य मूर्तमान हो उठते हैं । गुरु के आत्म-संयम के इस प्रसंग में यायावर कहता है कि`किंतु बोलना व्यर्थ था, कर्म बहुत से आघात सहने का एकमात्र उपाय होता है - फिर कर्म कितना ही असंगत क्यों न हो ।`[3] इसके पहले ही वृत्त में सामने से आती हुई बैलगाड़ी के कुछ ही क्षणों में जलमग्न होने के दृश्य से यायावर स्वयं को सृष्टि के अंतिम सत्य का साक्षात्-कार करते हुए जीवन और मृत्यु की दुरभिसंधि पर खड़ा पाता है । विराट सत्य की महिमा से आलोकित ऐसे ही जीवंत और चिरंतन तत्व इस कृति को दार्शनिक आकर्षण प्रदान करते हैं । इसे ही डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने `प्रकट तथ्यों के बीच से झाँकने वाले अप्रकट सत्य को पकड़ने की लेखकीय क्षमता माना है ।`[4]

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 8
2. डा० रामकमल राय, अज्ञेय : सृजन और संघर्ष, पृ० 175
3. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 100
4. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 99

साहित्यिक मर्म को आकर्षक बनाने वाले कारकों - व्यंग्य और विडम्बना - को भी इसमें यथेष्ट स्थान मिला है । `कुणाल स्तूप उसी स्थान पर बनाया गया बताया जाता है, जहां विमाता तिष्यरक्षिता के दुष्चक्र से कुणाल की आंखें फोड़ दी गयी थीं । दैव की विडम्बना है कि इसी स्थान से समूची नगरी का और नीचे की उपत्यका और नदी का पूरा दृश्य दीखता है ।`[1] जिस स्थान पर आंखें फोड़ी गयीं, वहीं से चक्षुष्मा देखने की संभावनाएं पनपती हैं । `खुल्दाबाद का नामकरण औरंगज़ेब ने किया जिसका अर्थ है स्वर्ग की बस्ती ... औरंगज़ेब और उसके सारे परिवारों को वहीं मदफन मिला... अपने ही रचे हुए स्वर्ग में सब मिट्टी हो गये ।`[2] इसी प्रकार व्यंग्यात्मक रोचकता भी द्रष्टव्य है । `किंग्सवे-पठ` स्थान जहां कभी सम्राट का अभिषेक हुआ था और अब यहां तपेदिक का अस्पताल है ।`[3] साहित्यिक फलक को बेजोड़ बनाने में विडम्बना और व्यंग्य के परस्पर तनाव का अद्भुत योग है । विनोदपूर्ण और चपल भाषा शैली से सर्वत्र एक धारावाहिक रोचकता इस यात्रावृत्त में लक्षित होती है ।

इस यात्रावृत्त के आलेखन और प्रकाशन में, जैसा कि लेखक की भूमिका से भी स्पष्ट है, एक लंबा अंतराल रहा है । काल के इस अंतराल से कास्मिक रश्मियों के अनुसंधानकर्ताओं के दल के साथ निकला यायावर तत्कालीन वैज्ञानिक उपकरणों की अपूर्णता पर भी प्रकाश डालता है जिससे आज प्रौढ़ वैज्ञानिक

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 37
2. वही, पृ० 143
3. वही, पृ० 29

विकास की बात प्रकारांतर से सम्मुख आती है ।`वैज्ञानिक शोध के संबन्ध में जब उस अभियान का स्मरण करता हूं... तब शोध के तत्कालीन उपकरणों पर हंसने को मन होता है । कहां कास्मिक किरणों की खोज के लिए हमारा तोते का `पिंजरा` विद्युद्दर्शक और हमारी किरमिच की नाव और कहां आज के अंतरिक्षयान और माप ही नहीं, माप का विश्लेषण भी करने वाले स्वयं-चालित यंत्र ।`[1]

साहित्य की विधागत संकल्पनाओं में रचनाकार के विचार निहित होते हैं । अज्ञेय की `49 में प्रकाशित `नदी के द्वीप` कविता का सन् `51 में प्रकाशित `नदी के द्वीप` औपन्यासिक विस्तार है । `यात्रा-संस्मरणों में व्यक्त स्फुट विचार लेखक की कवि-व्यक्तित्व संबन्धी मौलिक मान्यताओं की ही पुष्टि करते हैं ।`[2] अज्ञेय की `49 में प्रकाशित `हरी घास पर क्षण भर` में संकलित `दुर्वांचल ` कविता की अंतिम पंक्ति ही इस यात्रावृत्त के शीर्षक का आधार है । दूसरे महायुद्ध के पूर्व और पश्चात् के यात्रानुभवों का एक लंबे अंतराल के बाद `53 में प्रकाशन यात्रावृत्त-निर्मिति के लिए संयोग को उद्घाटित करता है न कि योजना को । `अज्ञेय गद्य में ` संकलित`यात्रावृत्त की यात्रा` में लेखक ने संबन्धित तथ्य की ओर संकेत किया है ।

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? - भूमिका
2. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 103

नोट - प्रकाशन वर्ष कविता, उपन्यास, यात्रावृत्तांत का क्रमश: सदनीरा, नदी के द्वीप उपन्यास की भूमिका और यात्रा-वृत्तांतों की भूमिका से ।

(2) एक बूंद सहसा उछली

`एक बूंद सहसा उछली` पौवात्य और पाश्चात्य सांस्कृतिक जीवन-प्रणाली की तुलनात्मक मीमांसा में दीक्षित अज्ञेय की बाह्य और आभ्यांतरिक चिंतन और प्रतिक्रिया को समेटने वाली दूसरी विचारोत्तेजक, संघटित और संश्लिष्ट यात्रावृत्तात्मक कृति है । `अरे यायावर रहेगा याद ?` की भाँति इसमें कतिपय यात्रानुभवों की वर्षों तक थिराई हुई स्मृतियों की कथावृत्ति नहीं, बल्कि एक सतत यात्रा-निष्पत्ति से संबन्धित आख्यानों की तात्कालिकता यात्रावृत्त-निर्मिति की सोद्देश्यता को रेखांकित करती है । यह उद्देश्य `एक यूरोपीय चिंतक से भेंट` में कार्ल-यास्पर्स के `यूरोप में आपको क्यों और क्या दिलचस्पी है` के उत्तर के माध्यम से सम्मुख आता है । `मेरी दिलचस्पी दोहरी है । यूरोप के और हमारे सांस्कृतिक दाम में बहुत सी चीज़ों का साझा है, इतिहास कहीं इस साझेदारी के भाव को पुष्ट करता आया है तो कहीं ऐसा खिंचाव भी उत्पन्न करता रहा है कि हम उस संबन्ध को भूल जायं और उच्छिन्न कर देना चाहें । ... दूसरी ओर मेरी उतनी ही दिलचस्पी यूरोप की और हमारी असमानता में भी है ।`[1] वस्तुत: रोम, इटली, स्विटजरलैण्ड, लन्दन, आयरलैण्ड, स्वीडेन, नार्वे और जर्मनी आदि यूरोपीय देशों के इस यात्राख्यान में `भारत और यूरोप की मूर्त तथा अमूर्त समानताएं, असमानताएं, विसंगतियां और अनुकरण सभी को पकड़ने की लालसा विद्यमान है ।`[2]

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 39
2. डा० ओम प्रकाश अवस्थी, अज्ञेय गद्य में, पृ० 113

इस यात्रावृत्त के प्रथमाख्यान से ही यायावर के सौंदर्यबोध की तलस्पर्शी साहित्यिक अभिव्यक्ति मुखर हो उठती है । पर सौंदर्य का बहुआयामी चित्रण हो या दार्शनिक-सांस्कृतिक उपादानों पर गहन चिंतन-विश्लेषण, सर्वत्र लेखक की तुलनात्मक दृष्टि की प्रधानता रेखांकित होती है क्योंकि यहां विदेशाटन में निकले ठेठ सैलानी की यायावरी दृष्टि नहीं, मूलत: भारतीय साहित्य, संस्कृति और चिंतनधारा के परिपुष्ट परिपाक की प्रतिनिधि दृष्टि ही सम्मुख आती है । यही कारण है कि रोम के सौन्दर्य पर अभिभूत यायावर को नयी दिल्ली का करुण सौन्दर्य याद आता है । `नयी दिल्ली भी शायद रोम की सात पहाड़ियों के समान सुंदर हो सकती यदि हमने सातों पहाड़ियों को खोद कर सपाट न कर दिया होता... ।`[1] `योरोप की अमरावती : रोम`, `यूरोप की पुष्पावती : फिरेंजे`, `खुदा के ससुरे के घर : असीसी`,`बीसवीं सदी का गोलोक` आदि विशुद्ध भारतीय सांस्कृतिक शब्दावली में पिरोये हुए ये शीर्षक एक ओर नामानुकूल अंतरंग सामग्री के निदर्शन हैं तो दूसरी ओर यायावर के सूक्ष्म सांस्कृतिक पर्यवेक्षण के परिचायक भी ।

`संस्कृति`, `सभ्यता` की तुलना में श्रेष्ठ ठहरती है । `संस्कृतियां आत्म-संस्कार हैं, सभ्यताएं वस्तुओं के निर्माण और उपभोग की दीक्षा ।... संस्कृतियां सर्जनशील होती हैं,... सभ्यताओं का संबन्ध निर्मितियों तक ही रह जाता है ।`[2] संस्कृति और सभ्यता से संबन्धित यही सूक्ष्म विश्लेषण `बीसवीं सदी का गोलोक` आख्यान में भी द्रष्टव्य है । `सभ्यता यदि व्यक्ति की स्वतंत्रता का

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 11
2. अज्ञेय - छाया का जंगल, पृ० 29

निर्वाह करते हुए एक सुगठित और सुव्यवस्थित समाज के रूप में रहने की कला का नाम है, तो जिस देश में ये छोटे-छोटे किंतु स्मरणीय अनुभव मुझे हुए वह संसार का कदाचित् सबसे अधिक सभ्य देश है । मानव का वह शील-संस्कार जिससे वह सहज और निरायास भाव से वैसा आचरण करता है, जो दूसरे के लिए सुखकर, प्रीतिकर या कल्याणकर है और दूसरे पर बोझ नहीं बनने देता... तो निस्संदेह स्वीडन एक अत्यन्त पुष्ट संस्कृति-संपन्न देश है ।`[1] किंतु सुखद और आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि `स्वीडन में नैतिक मूल्य का निर्वाह आधुनिकतम वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ होता है ।`[2]

संस्कृति-चिंतक यायावर की घोर दार्शनिक मीमांसा से ओत-प्रोत कई जीवंत प्रसंग इस यात्रावृत्त को चिरंतन बनाते हैं । वस्तुत: विशुद्ध दार्शनिक चिंतन पद्धति इस कृति में एक शैलीगत विशिष्टता के रूप में उद्घाटित है । यद्यपि दार्शनिक-धार्मिक जिज्ञासायें `एक बूंद...` में आद्यन्त हैं, फिर भी `एक यूरोपीय चिंतक से भेंट`, `असीसी` तथा `एक दूसरा फ्रांस` आदि आख्यानों में मीमांसा-मूलक विशेष दार्शनिक दृष्टि सम्मुख आती है । अंतिम वृत्त `प्राची-प्रतीची` में संकलित विचारसूत्र तुलनात्मक रूप से भारतीय और यूरोपीय चिंतनधारा में दीक्षित यायावर की अर्जित दार्शनिकता के सशक्त प्रमाण हैं ।

वैज्ञानिक अस्तित्ववाद के प्रमुख पोषक यास्पर्स के प्रश्न `क्या भारत में डा० राधाकृष्णन को बड़ा दार्शनिक माना जाता है ?` का उत्तर उन्हें पश्चिम

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 137
2. वही, पृ० 137

के लिए पूर्व का भाष्यकार या व्याख्याता माना जाता है ।`[1] एक यूरोपीय और भारतीय चिंतन के बीच दार्शनिक संवाद की भावभूमि निर्मित करता है । यह संवाद दार्शनिक वार्तालाप से छिटक कर भारतीय और पश्चिमी कला संबन्धी आदर्शों पर भी अग्रसर होता है । पर दुर्भाग्य से अस्तित्ववादी चिंतन के प्रधान कथ्य `वरण की स्वतंत्रता` से संबन्धित अज्ञेय का यह कथन अवलोकनीय है - पृथ्वी पर हम आये तो अपनी इच्छा से नहीं आये । पार्थिव जीवन का वरण हमने नहीं किया । तब वरण पर आधारित हमारे नीतिशास्त्र का प्रमाण क्या हो ?`[2] फिर आगे `संघर्ष की अवस्था पार कर समदर्शी और अनासक्त होकर लिखने की भारतीय दृष्टि` का उल्लेख सूचित करता है कि यायावर को अंतत: वांछित उत्तर नहीं मिल सका है । साथ ही इस चिंतक के `क्या सचमुच भारतीय लेखक समदर्शी और अनासक्त होते हैं ?` जैसे वक्तव्य के माध्यम से भारतीय लेखकीय आस्था के प्रति अविश्वास भी सम्मुख आता है । संवाद-गांभीर्य पूरी तरह स्खलित नहीं, यास्पर्स का प्रश्न `क्या वास्तव में आधुनिक परिस्थिति में मानव व्यक्ति को अपनी पसंद को व्यावहारिक रूप देने की छूट है ?... वह अनुभव करता है कि वह नहीं कर सकता । यही उसका नगण्यता का बोध है ।... बहुत लोग हैं जो सर्वात्मवाद को स्वीकार कर लेंगे, इसलिए नहीं कि वे उसे पसंद करते हैं, केवल इसीलिए कि वे अनुभव करते हैं कि उनके पसंद का कोई मूल्य नहीं होता ।`[3] कथन नि:संदेह गंभीर है, पर `ऐसे कई बिंदु होते हैं जहां से लेखक की खोज का रास्ता दार्शनिक के रास्ते से अलग हो जाता है` या `क्या भारतीय

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 40
2. वही, पृ० 45
3. वही, पृ० 43

लेखक सचमुच वैसे ही होते हैं जैसा कि आपका आदर्श है - समदर्शी और अनासक्त` जैसे कथनों में टालमटोल और भारतीय आदर्श को कमतर करके देखने का भाव भी कम नहीं है ।

`खुदा के मसखरे के घर : असीसी` में यायावर ने `दूसरा ईसा` के रूप में विख्यात संत फ्रांसिस के उदार आध्यात्मिक जीवन के विभिन्न दार्शनिक पहलू, विशेषत: उनके जीवन के `नि:स्वता, आनंद और रहस्यमय समर्पण - तीन बीज-मंत्रों पर यथेष्ट प्रकाश डाला है । यायावर कृत्रिमतापूर्वक परिवेष्ठित और मनुष्यों द्वारा सृजित पेरिस के प्राकृतिक और जादुई सौंदर्य पर नहीं रीझता, बल्कि दक्षिणी फ्रांस के `पियर-क्वि-वीर` मठ के प्राकृतिक सौंदर्यानुभूति ही उसकी आध्यात्मिक अविकलता को आर्द्र कर पाती है । इस मठ के निकटवर्ती वनखण्डी के पवित्रता-बोध के बारे में यायावर उद्धृत करता है कि `आज भी वन में प्रवेश करते ही जो भव्य, विस्मय शांति और श्रद्धा का भाव हठात् उदित होता है, उसे आप चाहें तो पुराने संस्कारों का प्रभाव कह लें, चाहे वातावरण में बसे हुए हुए देवोन्मुख भावों की गूंज... पर इसमें संदेह नहीं कि वन के बीच स्थित पहुंचते न पहुंचते व्यक्ति का मन बहुत कुछ बदल जाता है ।`[1] इस आध्यात्मिक प्रशान्ति में लीयमान यायावर को `ईसा की वह काष्ठमूर्ति चौंकाती नहीं, बल्कि यात्रा की सहज निष्पत्ति सी लगती है - मानो उसके न होने से ही व्यक्ति चौंक जाता ।`[2]

अपनी अनुपम नैसर्गिक सौंदर्य-समृद्धि का विरल उदाहरण फ्रांस और उसकी राजधानी पेरिस दोनों ही यायावर को रिझा-रमा नहीं पाते । पेरिस में

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 61
2. वहीं, पृ० 61

एक ओर जहां `सुंदर स्थापत्य... भव्य कलामूर्तियां, विराट् नाट्यनृत्यशालाएं, शृंगार-साधन, जगद् विख्यात पाटकला आदि हैं, तो दूसरी ओर `सैंकड़ों प्रमोद-गृह जहां आप करतब दिखानेवाली मक्खियों से लेकर आवरणहीनता की विभिन्न श्रेणियों पर अश्लीलता के विभिन्न स्तरों के हाव दिखाती हुई नर्तकियों के सभी तरह के कौतुक भी हैं ।`[1] जिस पेरिस में `अनेक चित्रकार, शिल्पी और लेखक अपनी समस्याओं के लिए हल, वेदनाओं के लिए हाला और आत्मविनाशिनी कुण्ठा के लिए हलाहल ढूंढ़ते हैं ` वह प्रबुद्ध यायावर के यहां `सौन्दर्य-प्रसाधन का केन्द्र भी है, जीवित मानवों का कबाड़खाना भी ; साहित्य और कला की नयी सूझ का उत्स भी है, विकृतियों के घूरे का ढ़ेर भी ।`[2] आधुनिक पेरिस को देखने वाली यायावर की यही द्वन्द्वात्मक दृष्टि वहां के `आकर्षण की विकृति और विकृति के आकर्षण` की जटिलता को भी लक्ष्य करती है । जिस तरह यूरोपीय यहां `गोपन भारत` की खोज में आते हैं, उसी तरह यायावर में एक समय में सम्पूर्ण यूरोप के वैचारिक, सांस्कृतिक प्रेरणा का सूत्रधार `गोपन फ्रांस` की खोज की तल्लीनता दिखायी देती है । `पियर-क्वि-वीर` के मठ और बेनेडिक्टी संप्रदाय अथवा मतवाद का दार्शनिक परिचय इस वृत्त की केन्द्रीय सामग्री है ।

इस वृत्त में दक्षिणी फ्रांस के सौंदर्य का वैविध्यपूर्ण और तलस्पर्शी चित्रण भी कम नहीं है । `भोर के समय क्रीटी द्वीप का चट्टानी अन्तरीप लिथोनस, जिसके आसपास छायी हुई धुंध में सूर्योदय की किरणें मानो सोने के जाल में सो

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 49
2. वही, पृ० 51

गयी थी । मैसीना के जलडमरू के दोनों ओर इटली और सिसली की तटरेखायें और दूर एटना ज्वालामुखी के हिम-मंडित शिखर की आकाश में निराधार टंगी हुई रेखा । सिल्ला और कैरिब्डिस की चट्टानें और भंवर जिनके लुभावने आकर्षण से यूलिसीज के बच निकलने की कथा अनेक बार पढ़ी है, लिपारी और आस-पास का द्वीप समूह और सागर में छितराये हुए शिलाखण्ड जिन में से प्रत्येक से संबद्ध पुराण गाथा का स्मरण उसे नया आकर्षण देता रहा ।'[1] इस साहित्यिक अभिव्यंजना में प्रकृति, पर्वतीय प्रदेश, पुराख्यान और सबसे बढ़ कर सौंदर्य चेता यायावर की सृजनात्मक अभिव्यक्ति - सभी का एक साथ संगुंफन द्रष्टव्य है । 'ऐसे अनेक सौंदर्यशाली अंचलों से गुजरते हुए अज्ञेय की सृजनात्मक मनीषा अपनी खुराक जुटाती रही है ।'[2]

रचनाकार की दार्शनिक जिज्ञासाओं का सामाजिक प्रवृत्तियों और चिंतन-धाराओं से सरोकार स्वीकारने वाला यायावर गाल्सवर्दी के धनकुबेरों का लंदन और वोटहाउस द्वारा वर्णित अभिजातीय रंगरेलियों में डूबे लंदन को भी देखता है तो डिकेंस द्वारा वर्णित 1666 की अग्नि में झुलसे लंदन को भी । वर्ड्सवर्थ और कीट्स की काव्यस्थली लंदन की वर्तमान साहित्यिक अमूर्तता पर यायावर सोचता है कि 'वह रहस्यमय प्रदेश जिसमें एडीसन और स्टील घूमते थे ; जानसन और पीप्स अपनी पैनी उक्तियों के लिए सामग्री ढूंढ़ते थे... कालरिज और डक्विसी नशा करके पिनकवियों की तरह रंगीन स्वप्न देखते थे... उस लंदन को कैसे मूर्त किया जा सकता है ?'[3] फिरेंज़े में प्रसिद्ध चित्रकार मिकेलांजेलो और

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 57
2. डा० रामकमल राय, शिखर से सागर तक, पृ० 109
3. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 75

जान जोखम में डालकर विज्ञानसम्मत उद्घोषणा करने वाले गैलिलियो की समाधि पर भी चर्चा है । ब्राऊनिंग-दंपत्ति के आवास से साक्षात्कार भी सुरक्षित है ।

`बीस हजार राष्ट्रकवि` में वेल्स की काव्यभाषा के बारे में की गयी यायावर की टिप्पणी उसकी साहित्यिक निष्ठा को व्यंजित करती है ।`भारत में ब्रज-भाषा के सहज माधुर्य के बारे में जैसी किंवदन्तियां प्रचलित हैं, कुछ वैसी ही बात वेल्स भाषा की सहज संगीतात्मकता के बारे में कही जा सकती है । संगीत का यह संस्कार वेल्स भाषा का इतना गहरा अंग है कि उसकी गहरी छाप वेल्स लोगों द्वारा बोली और लिखी गयी अंगरेज़ी पर भी पड़ती है । पिछली शती में जैराल्ड मैनली हायकिंस की कविता का जो प्रभाव अंग्रेजी काव्य रचना और छन्द पर पड़ा, उसका श्रेय वास्तव में वेल्स भाषा को ही जाता है ।`[1] साहित्यिक गौरव के लिए एकमात्र भाषिक समृद्धि की अनिवार्यता का उल्लेख कर `यूरोप की छत पर ; स्वीटजरलैण्ड` में यायावर वहां की साहित्यिक बेहाली का खुलासा करता है --`स्वीटजरलैण्ड में तीन भाषाओं को समान राजकीय प्रतिष्ठा प्राप्त है ।... बिना एक भाषा में पूरी तरह डूबे रचनात्मक साहित्य कार्य नहीं हो सकता... स्विटज़रलैण्ड में बड़े साहित्यकार नहीं हुए हैं ; जो हुए हैं, वे उसकी बिभाषिकता के उदाहरण नहीं हैं... एक भाषा और भाषिक संस्कृति के वातावरण में पले हैं - जर्मन के या फ्रेंच के ।`[2] बौद्धिक कलाबाजियों और शाब्दिक बाज़ीगरी से अनभ्यस्थ श्रोता को

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ0 109
2. वही, पृ0 36

चमत्कृत कर देने वाले फ्रांसिसियों से भी यायावर का पाला पड़ा है । शेक्सपियर स्मारक थियेटर में बैठी एक तुतलाती हुई स्त्री की स्वयं शेक्सपियर के बारे में जिज्ञासा थी -`लेकिन यह शेक्सपियर कब हुआ, सचमुच बड़ा लोकप्रिय नाटककार है ? हमें तो कुछ-कुछ पुराना जान पड़ता है` पर यायावर चुटकी भी लेता है ।`थोथो, एथी मुसीबत में शेक्सपियर कैथे देखा जा थकता ! इसमें तो सांस लेना भी मुश्किल था ।`[1] यात्रा में प्रत्यक्ष किये विभिन्न देश और वहां की सामाजिकता को यायावर ने वहां की कला और साहित्य की सापेक्षता में भी उकेरा है ।

अज्ञेय में एक सहज पुरातात्विक ललक है । यही कारण है कि `तक्षशिला`, नालंदा, सारनाथ ये नाम यायावर के शरीर में पुलक उत्पन्न करते हैं ।`[2] `यह यायावर का पैतृक दाय भी है ।`[3] पुरातत्व, वास्तु आदि के ऐतिहासिक स्रोत सुदूर अतीत की सांस्कृतिक परंपरा को अपने ढंग से मुखरित करते हैं ।`भारतीय नागरिक कैसे रहता था, इसका उत्तर खोजने के लिए हमें `मृच्छकटिक` अथवा `कादम्बरी` के संदर्भ खोजने पड़े - यह गौरव का विषय नहीं हो सकता` ।[4] आज नये के उन्माद में पुराना वर्जित क्षेत्र हो गया है । जबकि `नया पुराने को काटता नहीं, बल्कि और विस्तीर्ण करता है ।`[5] इस प्रसंग में लेखक फ़िरेंज़े की अद्वितीयता लक्ष्य करता है । `फ़िरेंज़े की हर गली मानो चित्र-वीथी है, पत्थर

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 88
2. अरे यायावर रहेगा याद ? - पृ० 36
3. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 189
4. वही, पृ० 23
5. वही, पृ० 24

के हर गज का एक खण्ड मानो शिलित इतिहास का एक खण्ड है... और स्थापत्य की परंपरा गलियों में भी उतनी ही जीवंत है... ।`[1] थर्लमेयर झील के किनारे स्थित अपने स्थापत्य में इसाई धर्म-भावना को प्रतिबिंबित करने वाले विथ्वर्न गिरजाघर को यायावर देखकर यह भी कह सका है कि `अगर काठ का नगीना हो सकता है, तो यह गिरजाघर वैसा ही नगीना है ।`[2] द्रुतगामी यांत्रिकता के बहाव में विलीन होती पुरानी संस्कृति के प्रति यूरोप-वासियों के दर्द को लक्ष्य कर लेखक भारत और यूरोप की `पुरानेपन` को देखने वाली दृष्टि में निहित अंतर को दिखाता है । भारतीय `पाण्डवों के किले`, `सीता की कहानी`, सिकन्दरा और ताजमहल आदि ऐतिहासिक, पौराणिक और धार्मिक महत्व को देखकर हिल्लोलित हो लेते हैं ।`यूरोप के पुराने के अंदर सारा जीवन भी आता है ।... यूरोपीय की दृष्टि शुद्ध सामाजिक-सांस्कृतिक प्राचीन की ओर अधिक रही है, जबकि हमारी रुचि पौराणिक ऐतिहासिक की ओर ।`[3] इन सांस्कृतिक उपादानों की रक्षा के लिए नागरिक उत्तर-दायित्व अपेक्षित है । बनारस का अद्वितीय गंगा-तट और उसके ऐतिहासिक घाटों की चिंता सबसे पहले बनारसियों को होनी चाहिए, राज्य की सहायता बाद की बात है । वस्तुत: यूरोपीय जीवन में नागरिकता का बोध भारत की अपेक्षा अधिक है । `भारत के काज़ी शहर पड़ोस के अंदेशे से दुबले होते रहते हैं ।`[4] अधिकांश यूरोपीय नगरों की स्वच्छता, सामाजिक अनुशासन, विवेक-

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 23
2. वही, पृ० 91
3. वही, पृ० 188
4. डा० ओमप्रकाश अवस्थी, अज्ञेय गद्य में, पृ० 144

सम्मत व्यवहार आदि से वहां के नागरिकों की कर्तव्य भावना की पुष्टि होती है । `फिरेंजे के साधारण नागरिक की संस्कारिता का सही प्रतिचित्र वार्तालाप में मिल जाता है ।`[1]

`समता उसी समाज में होती है जो स्वतंत्र हो, और समाज वही स्वतंत्र होता है जिसका अंग व्यक्ति स्वतंत्र हो ।`[2] इस व्यंजना में निहित स्वतंत्रता की वकालत क्या स्वीडन के बारे में उसी तरह से लागू होती है क्योंकि `स्वतंत्रता एक सीमा के बाद व्यक्ति को एकाकी भी बनाती है` - यह अनुभव भी यायावर को स्वीडन में हुआ है । यांत्रिक गतिशीलता बनाम व्यक्ति की विवशता संबंधी लेखक का पैना विश्लेषण पाश्चात्य जगत की वास्तविकता को साकार करता है । `हां, यंत्र ने साधन बहुत दिये हैं ; मार्ग बहुत खोले हैं ; हर व्यक्ति को यह दिशा दिया है कि वह तनिक और तेज लपके तो कुछ और पा लेगा... और इसी लिए सारा जीवन लपककर कुछ पा लेने का ... एक अंतहीन प्रयास हो गया है ।... दौड़ इसलिए नहीं कि दौड़ना चाहते हैं, इसलिए कि रुक नहीं सकते ।`[3] इसी बिंदु पर डा० रामकमल राय ने यह लिखा है कि `प्रसिद्ध समाजवादी विचारक डा० राममनोहर लोहिया अक्सर कहा करते थे कि यूरोप और अमेरिका के आदमी के लिए सच बोलना भी एक लाचारी है ।... यदि वे झूठ बोलेंगे तो उसकी सजा उनके यंत्र ही उन्हें देंगे । अपने ही द्वारा रचे चक्र का इतना बड़ा मोल !`[4]

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 39
2. वही, पृ० 144
3. वही, पृ० 9
4. डा० रामकमल राय, अज्ञेय : सृजन और संघर्ष, पृ० 185

रोम से आरंभ होकर जर्मनी में समाप्त होने वाली `एक बूंद सहसा उछली` के बहुरंगी फलक में वास्तविक यूरोपीय चरित्र उद्घाटित है । यहां `विद्रोह की परंपरा में ` अपनी मृत्यु का इतिहास लिखने वाला फासिस्ट सवा विरोधी लाउरो द बोसिस भी है और अट्ठारह विवाह रचाने वाली मादाम अल्वारेस भी, असीसी के संत फ्रांसिस भी हैं और वयस्कों का घोर गंभीर तथा बच्चों का हमजोला जर्मन कार्ल भी, हठात् श्रद्धा भाव उमड़ानेवाले नि:सन्तानी मायर दंपत्ति भी हैं और शराबी नशे में उशृंखल व्यवहार करने वाला जानामाना पर `अनमना कवि लिनग्रेड भी । अत: यह यात्रावृत्त यूरोपीय समाज की स्पंदनशील और संश्लिष्ट गाथा है ।

यूरोपीय देशों की सौंदर्य-संबन्धी इतिवृत्तात्मक बहुश्रुतियों की लेखक ने सूक्ष्म पड़ताल की है । पेरिस तो है ही आकर्षण की विकृति और विकृति का आकर्षण ।` इसी तरह स्विस दृश्य को देखकर उसका अतिशय सौंदर्य मन में सजीव सा जमता नहीं है, कुछ ऐसा जान पड़ता है कि रंगीन चित्र देख रहे हों ।`[1] `रोम और पेरिस की तुलना में लन्दन कुरूप है ; स्टाकहोम और कोपेन-हागेन की तुलना में गन्दा ; बर्लिन की तुलना में शिथिल और निकम्मा...`[2] लंदन को अन्य यूरोपीय नगरों से इस विश्वसनीय स्तर तक तौलने वाली लेखक की अचूक दृष्टि में `खुदा के मसखरे के घर : असीसी` में `यूनान यूरोपीय सभ्यता का पिता है तो इटली उसकी माता है ; असीसी उस मातृ-रूप के चेहरे का स्मित भाव है -

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 33
2. वही, पृ० 75

मुदित करुणालय और सर्वदा एक-सा वात्सल्य भर ।`[1] `राइन के साथ साथ` में `अगर राइन स्वयंवरा युवती है तो डैन्यूब निश्चय ही पृथुलवारिणी राज-महिषी ।`[2] पत्र-पेटिका के ऊपर लिफाफा और तत्संबन्धी मूल्य के बराबर पैसे रखा जाना, टिकट के लिए पंक्ति में स्टूल पर पैसे रखकर चले जाना और वापसी पर टिकट उपलब्ध कर लेना आदि विचित्र और सुखद यात्रानुभव यूरोप के नागरिक जीवन की ईमानदारी को सम्मुख लाते हैं ।

`लेखक ने ऐतिहासिक वृत्तों, पुराकथाओं, पौराणिक आख्यानों, परियों की कहानियों तक का उल्लेख अपनी यायावरी में किया है ।`[3] पौराणिक आख्यान संबन्धी एक आख्यान यहां उल्लेखनीय है ।`डेनमार्क की देवी गेफ़ियन को वर मिला कि स्वीडन की जितनी भूमि पर वह हल चला लेगी, उतनी भूमि उसे मिल जायेगी । अपने चारों पुत्रों को हल में परिवर्तित करके गेफ़ियन ने हल चलाना शुरू किया, और इस प्रकार सीलैण्ड डेनमार्क का अंग बन गया ।`[4] `धर्म-विश्वासों की गोधूली` तो परियों की कहानी पर केन्द्रित आख्यान है ही । यहां लोकप्रचलित किस्से, मिथक, अंधविश्वास आदि की भरपूर चर्चा है । यूरोपीय सभ्यता और संस्कृति को निर्धारित करने वाले तत्वों और कारकों पर ज्ञानवर्द्धक साहित्यिक प्रकाश इस यात्रावृत्त की अंतरंग विशिष्टता है ही, राज्य व्यवस्था की शासन-संबन्धी प्रसंगों की भी कोई कमी नहीं है । `पश्चिमी लोकतंत्रवाद के विकास में आल्टर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, अमेरिका को उसने 13 राष्ट्रपति

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 32
2. वही, पृ० 173
3. डा० ओमप्रकाश अवस्थी, अज्ञेय गद्य में, पृ० 113
4. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 168

दिये ।`[1] सारे पश्चिम को एक करारा देने वालों के लिए `आप भी तो अंग्रेज़ हैं ` के तिलमिलाकर दिये गये उत्तर `नहीं, मैं वेल्स हूं ` का घोर अन्तर्विरोध भी है ।

`प्रयोगवादी अकेला ही एक मैं दो होता है, ... एक वह स्वयं और दूसरा इसका ममेतर ।`[2] इस यात्रावृत्त के शीर्षक का आधार `अरे यायावर रहेगा याद ?` की ही भांति अज्ञेय की स्वरचित कविता का अंश है । प्रकारांतर से प्रयोगवादी `ममेतर` को सार्थक करने वाली यूरोपीय यात्रा के समानांतर यायावर की भारतीय `मैं ` दृष्टि निरंतर गतिशील रही है ।`... है उन्मोचन - नश्वरता के दाग से ` का निहितार्थ नश्वरता से गहरे तक बिंधा, इसीलिए `उन्मोचित` पाश्चात्य सांस्कृतिक जीवन के बिंब को काव्यात्मक मूर्तता प्रदान करता है । इस कविता के लिए रमेशचन्द्र शाह की टिप्पणी अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है ।`कार्ल की कथा, मायर दंपति की कथा, मादाम अल्वारेस की कथा... क्या इन सब कथाओं में हर बार यही नर नहीं झांकता `जिसकी अनझिप आंखों में नारायण की कथा भरी है ?` क्या यहीं कहीं वह आलोक हुआ अपना भी निहित नहीं ; जो `उन्मोचन है - नश्वरता के दाग से भी ?`[3]

वस्तुत: जीवन और मनुष्य को व्यापक अर्थों में समझने का आग्रही यायावर बर्लिन को यूरोप का स्नायु बताता है । `यूरोप का स्नायु केन्द्र ; बर्लिन ` में `यूरोप का असली चेहरा मूलत: बर्लिन में दीखता है` क्योंकि सिविल नाफरमानी का चरमसुख वहीं है ।

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 115
2. डा० ओमप्रकाश अवस्थी, अज्ञेय गद्य में, पृ० 102
3. रमेशचन्द्र शाह, अज्ञेय, पृ० 54

विकसनशील सर्जनात्मक प्रक्रिया से जुड़े अज्ञेय की प्रारंभिक रचनाशीलता अहं से प्रभावित रही है, पर उत्तरार्द्ध में अहं का विसर्जन स्पष्ट है । काव्य-क्षेत्र में `बावरा-अहेरी` की कविताएं और विशेषत: `असाध्य वीणा` अहं के विसर्जन की प्रमाण है । `एक बूंद सहसा उछली` में निहित अहं निरसन भाव के संदर्भ में स्वयं अज्ञेय द्वारा उल्लिखित भूमिका का एक अंश उल्लेख्य है ।`पाठक अनुभव के प्रति खुला हो, जीवन से प्रेम करता हो, यह भी मैं चाहता हूं । जो अनुभव के प्रति खुला नहीं है, उसे दूसरे के अनुभव से भी क्या प्रयोजन हो सकता है ।`[1] अत: `उत्तरकालीन अज्ञेय, तो अनुभूति के तईं अपने को उन्मुक्त भाव से समर्पित कर देने का विश्वास करते हैं ।`[2] ख्यातिलब्ध चिंतक या कवि के साक्षात्कार के समय, विभिन्न देशों की संस्कृति, जीवन-प्रणाली, सौंदर्य-बोध आदि के तुलनात्मक विश्लेषण के समय सर्वत्र लेखक में एक दृढ़ आत्म-विश्वास ही परिलक्षित होता है, जो अहं का स्खलन कदापि नहीं ।`शेखर - एक जीवनी` में अज्ञेय ने क्रांतिकारी चरित्र के मूल में `सात्विक-घृणा` को अनिवार्य माना है । पर इस यात्रावृत्त में `सात्विक घृणा की यह सत्ता भी पर्यवसित हो गयी है । अज्ञेय के तृतीय और अंतिम उपन्यास `अपने-अपने अजनबी` की कथान्विति में गहरी विदेशी पृष्ठभूमि उनकी यूरोपीय यायावरी का प्रत्यक्ष प्रमाण है । इसमें यायावर की आलोचकीय भूमिका भी कम सराहनीय नहीं । `ये पश्चिमी लोग मेरी समझ में नहीं आते । सुंदर के प्रति समर्पित नहीं होते,

---

1. एक बूंद सहसा उछली - भूमिका
2. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 99

वैसे के वैसे छिछले और सतही बने रह जाते हैं ।`[1]

संसार के बड़े आश्चर्यों में से एक `जायंट्स काज़वे ` का वर्णन मार्मिक सर्जनात्मकता से ओत-प्रोत है । `किसी सुंदर प्रागैतिहासिक युग में ज्वाला-मुखी के ताप से पिघला हुआ पत्थर फिर जमा तो स्फटिक मणिवत नियमित आकारों में और ऐसे ही नियमित रूप और आकार-प्रकार के हज़ारों प्राकृतिक षटकोण स्तम्भ यहां देखने में आते हैं ।`[2] मार्मिक सटजुता का एक अन्य प्रसंग यहां कदाचित् अनुचित नहीं होगा । `चट्टानों के बीच में हंसती और किलोल करती आती हुई फेनोज्ज्वल नदी ।... अपनी ही ग्रंथियों से उलझे हुए वृक्ष और छोटे और कुंठित होते हुए धीरे-धीरे लुप्त हो जाते हैं और उनका स्थान धैर्यवती झाड़ियां ले लेती हैं ।`[3]

यह विशद यात्रावृत्त अपनी अन्विति में तरल काव्यानुभूति की सृष्टि करता है ।`... झीलों के प्रदेश का सौंदर्य झील या पर्वत में ही उतना नहीं है, जितना कि घूम-फिर कर उसे आत्मसात कर देने में ।`[4] यायावर के यहां स्मृतियों को लिपिबद्ध करने की शीघ्रता नहीं, तात्कालिक अभिव्यक्ति का सम्मोहन नहीं, बल्कि इसे आत्मसात करने की प्रक्रिया में स्मृतियों को चेतना में थिराने का कायल है । `जब जब स्मरण करते हैं, तब तब क्या ऐसा नहीं होता कि सुख का अनुभव

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 88
2. वही, पृ० 114
3. वही, पृ० 128
4. वही, पृ० 96

और अधिक सुखकर होता जाता है और कटु अथवा दु:खद अनुभव कटुतर और अधिक दु:खद ।`[1] यही चिंतन सूत्र यायावर को `कुछ साहित्यिक स्मृतियां फिर हरी हो गयी हैं, कुछ कविताएं दुबारा पढ़ने की प्रवृत्ति हुई है ` से अंतरंग साहित्यिक स्तर पर जोड़ता है । सृष्टि की परिव्याप्ति में अद्वितीय प्राकृतिक सौंदर्य भरपूर है । विशुद्ध यायावरी या विदेशाटन के कारण इसकी काव्याभिव्यंजना असंभव प्राय ही रहती है । लेखक इस बिन्दु पर भिन्न स्तर के सौंदर्य की बात करता है । `एक सौन्दर्य होता है जो पहाड़ों और झीलों पर पड़ा रहता है, एक सौन्दर्य होता है जो इस रूपश्री और कविश्री की रागश्री के योग से उत्पन्न होता है । यह दूसरा सौंदर्य ही वास्तव में रस है, बल्कि रसायन है, राज-रसायन ।`[2] रूपश्री है तो उसे आत्मसात करने वाली कवि-दृष्टि की रागश्री नहीं, फिर कहां से रस की निष्पत्ति हो ?`[3] `अरी ओ करुणा प्रभामय` में सुदूर पूर्वा संस्कृति और साहित्य की स्पष्ट प्रेरणा भी लक्षित होती है ।

काल और तत्संबन्धी प्रतीति तत्व चिंतकों के लिए एक गंभीर विषय रहा है । काल का तीव्र बोध अज्ञेय के यात्रावृत्तों में भी वर्तमान है । `अरे यायावर रहेगा याद` के माफुली आख्यान में यायावर की एक लंबी कविता में काल-चिंतन स्पष्ट है । `एक बूंद सहसा उछली` के `एक दूसरा फ्रांस` वृत्त में `पियर-क्यि-वीर

---

1. अज्ञेय, छाया का जंगल, पृ० 17
2. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 5
3. डा० रामकमल राय, अज्ञेय : सृजन और संघर्ष, पृ० 192

अर्थात् घूमने वाली शिला की दार्शनिक व्याख्या में प्रवृत्त यायावर प्रतिपादित करता है कि `चक्रमित शिला । चक्रांत शिला । चक्रांत जो संक्रमण करके फिर लौट-लौट कर आता है, वह काल के अतिरिक्त क्या है ? समय की शिला ।`[1] स्वीडन में मध्यरात्रि का सूरज देखकर लोकोत्तर अनुभूति में भावविभोर होनेवाले यायावर की मनोदशा के बारे में डा० रामकमल ने लिखा है कि `उस कवि चिंतक के लिए जो बराबर काल की अवधारणा को लेकर अपने विचारों को सहेजता रहा, काल के इस नये अनुभव से अवश्य ही विस्मय विभोर होने की अनुभूति मिली होगी ।`[2]

भारतीय दासता के नियामकों की भूमि इंग्लैण्ड में शोध के सिलसिले में गये लोहिया ने यह कार्य जर्मनी में पूरा किया । पर अज्ञेय के लिए `लंदन एक सहज घरेलूपन का भाव उत्पन्न करता है` । इस कथन में कोई मानसिक ग्रंथि नहीं । लेखक के लिए लंदन कई अर्थों में एक हिंदुस्तानी लंदन है, इसलिए नहीं कि तत्कालीन औपनिवेशिकता के पोषक अंग्रेजों और अंग्रेजियत के प्रति उसमें सम्मोहन भाव है, इसलिए कि साम्राज्यवादियों की सुलझी कलात्मक दृष्टि ने अनगिन भारतीय मूल्यवान सांस्कृतिक उपकरणों को वहां स्थानांतरित कर दिया । विशुद्ध भारतीय सांस्कृतिक उपादानों के स्थानांतरण पर लेखक क्षुब्ध है । पर वे सुरक्षित हैं - सोचकर संतुष्ट भी है । बौद्धिक ऋजुता अज्ञेय साहित्य की अंतरंग विशिष्टता है । पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों की तुलना, आनंद और समरसता और आस्तिकता आदि पर प्रतिपादित विचार-सूत्र अंतिम आख्यान `प्राची प्रतीची` में

----

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 63
2. डा० रामकमल राय, अज्ञेय : सृजन और संघर्ष, पृ० 184

विन्यस्त है जो इस वृत्त को घोर दार्शनिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं । इतिहास, भूगोल, कला, संस्कृति दर्शन आदि सभी की संश्लिष्टता से यह यात्रावृत्त असंदिग्ध रूप से बहुआयामी बन पड़ा है । स्वयं लेखक द्वारा खींचे चित्रों के संकलन से `अरे यायावर ...` की भाँति इस वृत्त की प्रामाणिकता रेखांकित होती है । `एलोरा की गुफाएं हों या फिरोज़ का स्थापत्य, अस्तित्ववादी विचारधारा हो या लोहे की छूत से संबन्धित अंधविश्वास, लेखक की विचार परिधि में जो कुछ भी आता है, आलोकित हो उठता है ।`[1] इसमें संस्मरण सुख, रेखांकन तोष, रिपोर्टिंग गंध, पहाड़ी सभ्यता, पुरविया संस्कृति सब साथ ही साथ हैं ।[2]

(3) जन जनक जानकी

`कितनी नावों में कितनी बार` पर प्राप्त ज्ञानपीठ पुरस्कार की धनराशि से अज्ञेय ने साहित्यिक-सांस्कृतिक न्यास `वत्सल निधि` की स्थापना की, जिस के तत्वावधान में कतिपय सांस्कृतिक यात्राएं सम्पन्न हुई हैं । `पहली यात्रा` जानकी जीवन-यात्रा` के नाम से मिथिला से चित्रकूट तक की संपन्न हुई ।`[3]

---

1. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 102
2. डा० ओमप्रकाश अवस्थी, अज्ञेय गद्य में, पृ० 117
3. डा० रामकमल राय, शिखर से सागर तक, पृ० 171

`प्रभात प्रकाशन, दिल्ली ; से मुद्रित `जन जनक जानकी` इसी जानकी जीवन-यात्रा की स्मारिका है जो एक पुस्तकाकार उपलब्धि के पश्चात् भी अधूरी है क्योंकि `यात्रा-वृत्तांतों के संकलन से अलग किसी पुस्तक की परिकल्पना है तो इस यात्रा में से एक नहीं, बल्कि दो पुस्तकों की उपलब्धि होगी... `जन जनक जानकी` उस यात्रा की पहली पुस्तकाकार उपलब्धि है ।`[1] कुल उन्नीस साहित्यकारों, चित्रकारों आदि के स्वायत्त यात्रानुभव संबन्धी वृत्तों का संपादन अज्ञेय ने किया है, जिसमें तमाम नयनाभिराम चित्रवीथियों की झांकी के साथ ही भूमिका से लेकर अन्य समस्त वृत्त भिन्न-भिन्न साहित्यकारों द्वारा शब्दबद्ध हैं ।

`जन जनक जानकी` शीर्षक की स्वाभाविक व्यंजना पाप-पुण्य संबन्धी तीर्थाटन की ओर संकेत कर रही है । इस यात्रावृत्तांत की महत्ता रामायण की कथावस्तु को निर्धारित करने वाले कारकों की पड़ताल में नहीं, बल्कि लोक-संस्कृति की मूल्यवत्ता को उद्घाटित करने में है । सुदूर भारतीय अतीत की ऐतिहासिक भावभूमि में अभिजनवादी संस्कृति सदैव तलछट की तरह तैरती रही है, जबकि लोकहृदय की गहरी संपृक्ति निर्विवादरूपेण सर्वोपरि रही है । इस यात्रावृत्त की समूची व्यंजना में लोक-जीवन में रामकथा के सनातन तत्वों की क्रियमाणता आद्यन्त व्याप्त है । यह यात्रावृत्त प्रतिस्पर्धा और विशिष्टीकरण के वर्तमान समाज में भी लोकजीवन का रामकथा से अद्भुत तादात्म्य स्थापित करता है । दूसरे शब्दों में इसमें रामकथा एक माध्यम है लोक-जीवन तक पहुंचने का । जिस ``सीय-राम-मय` यात्रा में पूरा देश ही शताब्दियों से चलता आया है, उसी के संचित अनुभव को और सघन तात्कालिक अनुभूति का रूप देने वाली यात्रा ही यह `जानकी जीवन-यात्रा` थी ।`[2]

---

1. जन जनक जानकी - भूमिका
2. वही - भूमिका

अज्ञेय द्वारा संपादित इस कृति में उनके दो वृत्त क्रमशः `वनाश्रम नगर` और `स्मर त्वं पूर्वकं भावम्` ही संकलित हैं । सीता जन्मस्थली सीतामढ़ी से अयोध्या होती हुई चित्रकूट में समाप्त होने वाली `जानकी-जीवन-यात्रा` को लेखक ने वनाश्रम नगर में चित्रकूट में ही समाप्त नहीं माना है, क्योंकि `वास्तविक जानकी जीवन यात्रा तो चित्रकूट से आरम्भ होती है, क्योंकि वहीं से राम-जानकी अपनी `पायी हुई नियति से मुक्त होकर स्वयं अपनी नियति का निर्माण आरंभ करते हं ।`[1] पूर्ववर्ती मैंसालोटन और वर्तमान वाल्मीकि नगर में एक सुरम्य वनस्थली को देखकर यायावर के मन में महर्षि वाल्मीकि के आवास की छवि साकार हो उठती है ।`यहां का वन सचमुच वैसा था जैसे की कल्पना वाल्मीकि आश्रम के लिए हम सभी बचपन से करते आये थे ।`[2] यह वाल्मीकि नगर सघनवन और एक बड़ी और दो छोटी नदियों के त्रिवेणी-संगम पर स्थित है । इसे वाल्मीकि नगर की संज्ञा देने के मूल में यायावर के पूर्ववर्ती संस्कार और मनोवैज्ञानिक पूर्वग्रह आदि ही है । अनंतर एक ओर गंगा और तमसा नदी के अन्य संगम पर क्षितिज तक व्याप्त रेत और चटकती धूप है तो दूसरी ओर वाल्मीकि नगर के निकट का जंगल और जंगल के भीतर निर्जन शिव और देवी मन्दिर जैसा परस्पर विरोधी दृश्य भी । `ये सारे अवशेष तो मध्यकाल के हैं ` जैसे तार्किक साक्ष्य भी हैं, पर तलछट की तरह ही क्योंकि वस्तुतः ये यात्रानुभव मिथकीय स्थानों से संबद्ध यायावर की आध्यात्मिक प्रतिक्रिया को ही रेखांकित करते हैं । आध्यात्मिक प्रतिक्रिया का यही सूत्र यायावर को उसके कल्पनानुरूप वाल्मीकि नगर से जोड़ता है ।

---

1. जन जनक जानकी, पृ० 58
2. वही, पृ० 58

`इससे क्या कि आश्रम के खण्डहर कहाँ पर हैं या थे ? एक जीवंत आश्रम तो हमने छू लिया, आदि कवि की सर्जक करुणा का संस्पर्श तो हमने पा लिया ।`[1]

`स्मर त्वं पूर्वकं भावम्` में परम्परानुमोदित वनोन्मुख राम-सीता के चित्रकूट तक की विश्वसनीय यात्रा के पश्चात की यात्रा के बारे में चिंतन-मनन सम्मुख आता है । `लंका अगर परवर्ती सिंघलद्वीप अथवा आज की श्रीलंका नहीं है, जैसा कि पुरातत्व के कुछ शोधकर्ता कहते हैं, तो फिर सेतुबन्धु भी आज के रामेश्वरम् - धनुष्कोटि में नहीं है... और पंचवटी भी अंतत: पांच वटवृक्षों की ही तो बात है - पंचवटी कहां नहीं हो सकती थी ।`[2] तात्पर्य यह कि पुरातात्विक शोधार्थियों का निष्कर्ष मिथकीय विश्वास और आस्था में एक सीमा के बाद बहुत सार्थक नहीं । जो परम्परा वनोन्मुख राम-सीता के चित्रकूट तक की यात्रा के ही साक्ष्य जुटाती है, वहीं चित्रकूट के अनंतर यात्रा का साक्ष्य उसी परिमाण में नहीं जुटा पाती । लेखक के अनुसार `चित्रकूट के आगे एक महाविस्तार है जिसमें सत्य और कल्प की बीच की सीमा रेखा मिट जाती है ।... इसलिए चित्रकूट - एक यात्रा का विरामबिंदु और दूसरी अर्थ-गर्भ यात्रा का प्रस्थान बिंदु` है ।[3] इस वृत्त में वर्णित चित्रकूट की अर्थगर्भ यात्रा को लेखक ने देशकाल और पाश्चात्य महाकाव्य की अवधारणा आदि की सापेक्षता में भी विश्लेषित किया है जिसमें लोकसंपृक्त राम-सीता के सनातन चरित्र की भरपूर साहित्यिक व्याख्या वर्तमान है ।

---

1. जन जनक जानकी, पृ० 62
2. वही, पृ० 128
3. वही, पृ० 128

(4) अन्य फुटकल यात्रावृत्त

(क) सब रंग और कुछ राग

इन स्वायत्त यात्रावृत्तात्मक कृतियों के अतिरिक्त अज्ञेय के `सब रंग और कुछ राग`, `कहाँ है द्वारका`, और `छाया का जंगल` आदि रागात्मक और व्यक्तित्वव्यंजक निबन्ध संग्रहों में यात्रानुभव संबन्धी वृत्त भी संगृहीत हैं। सन् `82 में संकलित, पुनर्मुद्रित और कुटिचातन नाम से संप्रेषित `सब रंग और कुछ राग` के सत्रह निबन्धों में वस्तुत: विलक्षण वाक्प्रतिमा का नृत्य और हास्यपूर्ण ओज दोनों एक साथ समंजित हैं। `समझ लीजिए कि `कुटि-चातन` दक्षिणी लोक जीवन का वह मसखरा बौना है जो जिस के - तिसके - कन्धे पर सवार होकर उसे मनमाने नाच नचाता है - खुली हवा का प्राणी है ; और इन पंक्तियों का लेखक भी खुली हवा में और साफ़-सुथरे पर्वतीय वनप्रदेशों में पला है और घूमने फिरने का आदी है।`[1] इस उद्धरण का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों क्रमश: लेखक की हास्यपूर्ण भंगिमा और यायावरी वृत्ति को रेखांकित करते हैं। इसमें संकलित `मार्गदर्शन` के अतिरिक्त अन्य वृत्त प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भी यात्राख्यान से संबद्ध नहीं है।

`मार्गदर्शन` में पर्यटक के मार्ग पूछने पर विभिन्न भारतीय शहरों के नागरिकों द्वारा व्यक्त प्रतिक्रियाओं का व्यंग्य-विनोद से संपृक्त सजीव-चित्रण उपलब्ध है। `किसी बंगाली से मार्ग पूछो तो वह प्रश्न सुनने से पहले ही सीधे स्वर में कह देगा `जानि ना !` और किसी बनारसी (या कि बनरसिये) से पूछो तो वह ठोड़ी किसी तरफ को उठाकरसुरती की पीक संभालते हुए कह देगा

---

1. सब रंग और कुछ राग, पृ० 1

'छ का है सामने !' ... पंजाबियों का बना बनाया उत्तर प्रसिद्ध ही है कि 'जी, मैं तो इस शहर का नहीं हूं' फिर चाहे प्रश्न आपने यही पूछा हो कि सूरज किधर निकलता है ।`[1] कतिपय स्थान विशेष के नागरिकों द्वारा संप्रेषित ऐसे अन्यमनस्क उत्तर के साथ ही पटने में एक व्यक्ति द्वारा शहद की मिठास से अभिसिंचित 'गोलघर जाबै के बाटे नू !' जैसी प्रतिक्रिया भी है । लेखक की मान्यता है कि किसी व्यक्ति के उत्तर के माध्यम से ही उसका संपूर्ण अंतरंग चरित्र मुखरित हो जाता है । `आप एक बार उसके घर का रास्ता पूछ लीजिए : इस प्रश्न के उत्तर में ही उसके सारे संस्कार मुखरित हो उठेंगे । और उसके संस्कारों से आप उस सामाजिक परिवृत्त को भी पहचान सकेंगे... यानि उसकी संस्कृति से आपका परिचय हो जायेगा ।`[2] व्यक्ति के उत्तर तक को संस्कृति की सापेक्षता में विश्लेषित करने वाली लेखक की देशकाल के साथ व्यक्ति संस्कार की द्वन्द्वात्मकता को भी उभारती है । `जिस प्रकार देश-काल-ज्ञान से किसी व्यक्ति के संस्कारों का अनुमान कर लेते हैं, उसी प्रकार व्यक्ति के संस्कारों से हम उसके देशकाल को भी पहचान सकते हैं ।`[3]

पर व्यक्ति संस्कार, सामाजिक परिवृत्त और संस्कृति ही नहीं उद्घाटित होती है, एक उत्तर में युगांतर कौंध जाता है । `वह जो बहुत बड़े-बड़े दो लाल बोर्ड हैं न, जिस पर छः फुट के अक्षरों में लिखा है `खाज`,`खुजली` - वहां

----

1. सब रंग और कुछ राग, पृ० 6
2. वही, पृ० 8
3. वही, पृ० 9

एक रास्ते के सिरे पर बहुत बड़े बोर्ड पर लिखा है `डॉट वाक टू योर डेथ` और मोटर के नीचे गिरते एक आदमी का चित्र है । उसी सड़क पर हो लीजिए ; कोई पचास कदम आगे जाकर एक पक्की दीवार दीखेगी जिस पर चूने से लिखा है `नामर्दी - नामर्दी - ।` दीवार आगे चल कर बड़े अस्पताल से मिल जाती है - आप तुरंत पहचान लेंगे क्योंकि वहां बिगुल पर का निशान बना हुआ है और लिखा है `साइलेंस ज़ोन` ।`[1] इस उद्धरण में लेखक की वाक्पटुता, आत्मानुभव और व्यंग्य विनोद तो स्पष्ट है ही, कथ्य के केन्द्र में कालिक परिवर्तन भी स्पष्ट है । अत: `मार्गदर्शन` निबन्ध अत्यन्त सार्थक, और प्राणवान है ।

शेष निबन्धों की महत्ता यात्रास्थानपरक वृत्त को निर्धारित करने वाले तत्वों की दृष्टि से नहीं है । अत: शेष निबन्धों पर चर्चा यहां अनावश्यक होगी ।

(ख) कहां है द्वारका

कथ्य और शैली दोनों ही धरातल पर `सब रंग और कुछ राग` की अपेक्षा श्रेष्ठतर सन् 1982 में मुद्रित आत्मपरक निबंध-संग्रह `कहां है द्वारका` में वर्तमान वास्तविक द्वारका नहीं, बल्कि लेखक के स्वप्नलोक की एक अद्भुत नगरी है, एक रोमांचक द्वीप । यह भावपूर्ण निबन्ध ही इस निबन्ध-संग्रह के शीर्षक का आधार है । लेखक के दिवास्वप्नों की द्वारकानगरी का वास्तविक द्वारका से कोई साम्य नहीं । `वास्तविक द्वारका देखने के लिए सौराष्ट्र -

---

1. सब रंग और कुछ राग, पृ० 13

काठियावाड़ जाने की योजना मैंने कई बार बनायी ... लेकिन उस वास्तविक नगरी का कोई सामंजस्य मेरे स्वप्न की नगरी से बनता नहीं जान पड़ता ।`[1] बहुधा दिवास्वप्नों में उभरने वाले द्वीप का नाम भी लेखक माघ के `शिशुपाल-वध` में द्वारका वर्णन पढ़ते हुए हठात् रख देता है । `यही तो है मेरे दिवा-स्वप्न की द्वीप-पुरी । अज्ञेय पूर्व जन्म के संस्कारों, प्राग्बिम्बों, मनुष्य के मूल रोमानी स्वभाव, सहस्राब्दियों से संचित रागानुभव आदि के हवाले से काल्पनिक यात्रा का चित्रण करते हैं । `ऊँची चट्टान पर बनी हुई छोटी सी बस्ती, जिसकी चट्टानी नींव पर सागर की लहरें लगातार पछाड़ खाती रहती हैं... जब तक वह सामने रहती है, तब तक मैं काल का अतिक्रमण करके निरवधि काल के महाप्रांगण में विचरण करता रहता हूं, वह महाप्रांगण भी है और महा-सागर भी, और उसी के बीच में ध्रुव और अडिग और ज्योतिष्मयी खड़ी है - वह दिव्य द्वारका... ।`[2] अपनेपन के एकांत संवाद से इस निबंध के व्यक्तित्व व्यंजक तत्व संपुष्ट होते हैं । इस काल्पनिक यात्रा मात्र से लेखक हिल्लोलित और रोमांचित है तथा इसकी विलक्षण साहित्यिक अभिव्यक्ति वास्तविक यात्रानुभव से कम नहीं तुलती ।

यथार्थ के धरातल पर भी लेखक में `उसके साथ वंचित होने का कोई पर्युत्सुकी भाव नहीं जागता, बल्कि एक सिहरन भरी मगर फिर भी गहरी आश्वस्ति का ही बोध होता है जिससे मैं पूछता हूं तो प्रश्न-भाव से ही पूछता हूं - कहां है द्वारका ?`[3]

---

1. कहां है द्वारका, पृ० 87
2. वही, पृ० 85
3. वही, पृ० 87

यात्रावृत्त से संबन्ध नहीं होने के कारण शेष निबन्धों पर प्रकाश यहां अनावश्यक है ।

(ग) छाया का जंगल

`वत्सल निधि` के तत्वावधान में आयोजित `जानकी-जीवन यात्रा` नामक सांस्कृतिक यात्रा ही `छाया का जंगल` वृत्त की प्रेरणा है जो इस निबन्ध-संग्रह के शीर्षक का आधार भी है । `कहां है द्वारका` का सांस्कृतिक व्यापार भी यहां प्रकारांतर से उपलब्ध है । `जानकी-जीवन यात्रा` के क्रम में वाल्मीकि नगर की अनुभव की सापेक्षता में इस वृत्त का दार्शनिक कथ्य उल्लिखित है । `दिवास्वप्न यह नहीं है किन्तु इसमें दिवास्वप्न का आस्वाद भी है और एक तरह की रागदीप्त दार्शनिकता का भी ।`[1] लेखक के यहां प्रेम सूर्य की तेजोमयता के समकक्ष है जिसकी असंदिग्ध छाया से मानव-अस्मिता का संज्ञान और बोध, अहं और आत्मचेतन निर्धारित होता है । `हर पौराणिक अभिप्राय का एक रूपक होता है । वह रूपक मानो एक बड़े सत्य का मुखौटा है । मुखौटे की ओट से हम उस सत्य को देख सकते हैं ।`[2] पौराणिक मुखौटे की ओट से नि:सृत इसी सत्य से लेखक के यहां इस वृत्त में दार्शनिकता भरपूर स्थान पा सकी है ।

0

---

1. रमेशचन्द्र शाह, अज्ञेय, पृ० 51
2. छाया का जंगल, पृ० 13

तृतीय अध्याय

अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का वर्गीकरण

(1) बहिर्मुखी अथवा अन्तर्मुखी

(2) यात्रावृत्तांत अथवा संस्मरण

(3) यात्रावृत्तांत अथवा आत्मकथा

(4) यात्रावृत्तांत अथवा रिपोर्ताज

अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का वर्गीकरण

(1) बहिर्मुखी अथवा अन्तर्मुखी

'अरे यायावर रहेगा याद ?' की भूमिका में उल्लिखित लेखक के वक्तव्य 'यात्रा का विवरण जितना सूक्ष्म भू-विस्तार से संबद्ध होता है, उतना ही सूक्ष्म मानसिक भूगोल से भी' से यात्रा के बाह्य और आभ्यांतरिक पक्षों की असंदिग्ध सत्ता रेखांकित होती है । नानाविध चरित्र, स्थान, दृश्य और अनेकानेक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक सादृश्यों आदि से साक्षात्कार करने के साथ ही यायावर की मानस-यात्रा या कल्पना-यात्रा भी संपन्न होती रहती है । यायावर के इसी मानसी अथवा काल्पनिक यात्रा के मूल में उसकी अन्तर्मुखी यात्रा निहित होती है । वस्तुत: 'यात्री अपनी यात्रा को मानसिक प्रतिक्रियाओं के रूप में ही ग्रहण करता है ।'[1] नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्य, मनोरम वनखण्डी, उगते-बुझते सूर्य, मठ-मन्दिर, भग्नावशेष आदि स्थूल उपादानों के वस्तुनिष्ठ चित्रण से यात्रा-वृत्त का बहुरंगी और बहिर्मुखी स्वरूप ही उजागर होगा, अन्तर्मुखी नहीं । यूं पाठक की वस्तुनिष्ठ से अधिकतम अपरिचय की स्थिति उसके अधिकतम आत्मसात की स्थिति में पर्यवसित होगी, फिर भी यात्रा के विभिन्न संघातों से प्राप्त प्रेरक अंत:साक्ष्य और उसकी नैष्ठिक रचनात्मक शक्ति से यात्रा वृत्त की आभ्यांतरिक निर्मिति संभव है ।

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - साहित्यकोश ; डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 512

बाह्य यात्रा के बिना आभ्यांतरिक यात्रा संभव नहीं । पर अपने दृगों से केवल भूगोल नापने वाले यायावरों के यात्रावृत्तों में आभ्यांतरिक तत्वों का सर्वथा अभाव रहता है । यात्रावृत्त में ही नहीं, बल्कि किसी भी कृति में बाह्य और आंतरिक तत्वों के परस्पर तनाव से मार्मिक संघटनात्मक निष्पत्ति संभव हो पाती है । रचनाकार द्वारा कृति में वस्तु जगत के सत्य को अत्यन्त निकट लाकर एक अंतरंग अनुभव की-सी मार्मिकता पिरो देने पर अन्तर्मुखी तत्व मूर्तमान हो उठते हैं । फिर भी, केवल वस्तु जगत के चित्रण से ही आभ्यांतरिक तत्वों का उन्मेष संभव नहीं, आभ्यांतरिक तत्वों की अभिव्यक्ति में प्रवृत्त कृतिकार में आत्मविश्लेषण और आत्मालोचन की भी क्षमता होती है । स्वयं के अंतरंग के विश्लेषण के माध्यम से ही दूसरों की दृष्टि की समीक्षा संभव है । `स्काटलैण्ड के एक फक्कड़ कवि ने अपनी लोक-भाषा के एक काव्यांश
+ O Wad Some Pow'r the giftie gie us
To see oursel's as ithers see us.

में प्रभु से मिन्नत की है कि वह हमें कोई ऐसी शक्ति दे दे कि हम अपने आप को वैसे देख सकें जैसे दूसरे हमें देखते हैं ।`[1] वस्तुत: यह शक्ति तब तक अप्राप्य है जब तक कोई स्वयं को नहीं देखता । बाहरी और भीतरी सच के अपेक्षित तालमेल से ही बहुर्मुखी और अन्तर्मुखी तत्व रेखांकित होते हैं ।

सर्जनात्मक चमक से ओत-प्रोत `अरे यायावर रहेगा याद ?` की अपेक्षा `एक बूंद सहसा उछली` में अन्तर्मुखता अधिक है । `प्रकृति के प्रति उत्सव का

---

1. अज्ञेय, आत्मकथा, जीवनी और संस्मरण, समकालीन भारतीय साहित्य, अंक - जनवरी - मार्च - 87, पृ० 89

+ प्रस्तुत काव्यांश के लेखक का जिक्र स्वयं लेखक ने नहीं किया है ।

घनाभाव और सम्मोहन का गहरा रूप ` आदि से `अरे यायावर... ` का बहिर्मुखी पक्ष ही अधिक उजागर होता है । `अज्ञेय के पहले वृत्त में यात्रा-वर्णन अभिधार्थ में है, जबकि दूसरे में लेखक की बाहरी और आभ्यांतरिक दोनों यात्राएं साथ-साथ देखी जा सकती हैं ।`[1] `अंत:संघर्ष यूरोपीय चरित्र का अनिवार्य अंग है` जैसी सटीक और पैनी टिप्पणी करने वाला लेखक अस्तित्ववादी चिंतक यास्पर्स से कतिपय दार्शनिक बिंदुओं पर टकराने के बाद उनके अंतरंग व्यक्तित्व के विषय में `दिस मैन इज ऐट पीस विद हिमसेल्फ` रेखांकित करता है । `यास्पर्स का चेहरा देखते ही पहली बात जो मेरे मन में आयी ... कि यह चेहरा दोहरा नहीं है, यह व्यक्तित्व विभाजित नहीं है ।`[2] यूरोपीय समाज और संस्कृति तथा वहां के साहित्यिक-दार्शनिक आदि पक्षों का चित्रण करने के साथ ही वहां के अन्दरूनी सामाजिक सूत्र पर सटीक टिप्पणी करने और किसी दार्शनिक के अंतरंग चरित्र को उकेरने जैसे क्रमश: बाह्य और आभ्यांतरिक पक्षों से `एक बूंद ... ` भरी पड़ी है ।

लेखक दक्षिणी फ्रांस में बदलते हुए प्रकृति-वैभव की सशक्त मनोरमा-प्रस्तुति तक ही सीमित नहीं, वह `पियर-क्वि-वीर` मठ-क्षेत्र से प्राप्त तेजोमय आध्यात्मिक शांति को भी हृदयंगम करता है । `आज भी वन में प्रवेश करते ही भव्य, विस्मय, शांति और श्रद्धा का भाव हठात उदित होता है ।`[3] लेखक

----

1. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 100
2. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 39
3. वही, पृ० 61

मठ के नाम से एक प्रतीकार्थ ग्रहण करता है जिसकी सत्ता उसके मन में निरंतर नये-नये बिम्ब मूर्त करती है । इसका अंतरंग इतना प्रभावित है कि `वन की आसपास की वन-भूमि में अकेला घूमता हूं तो ये बिम्ब इस अकेलेपन को मर्यादित किये रहते हैं । कोठरी में अकेले बैठता हूं तो नीरव-वायु-मण्डल में वे मंडराते रहते हैं । कुछ लिखता हूं ... लिखे हुए की मानस आवृत्ति करता हूं तो उनके स्वर झरने की कल-कल में उसे मुखर भाव से दोहरा जाते हैं ।`[1] यह समूचा अध्याय लेखक की आभ्यांतरिक अभिव्यक्ति की समृद्धि से ओत-प्रोत है । आत्मचिंतन की स्थिति में लेखक यह भी स्पष्ट करता है कि `अपने को आस्तिक कहते हुए मुझे संकोच होता है, यद्यपि मैं जानता हूं कि मैं नास्तिक भी नहीं हूं ।`[2] नितांत एकांत क्षणों में भी उस में दार्शनिक चिंतन की अंतरंग उद्यमशीलता दिखायी देती है । `एकांत में मृत्यु से साक्षात् होने पर कैसा लगता है, अत्यन्त सूक्ष्म काल में तो... केवल दुर्दान्त जीवन-प्रेम उभरेगा ; अस्तित्ववादी इसी सूक्ष्म क्षण का विश्लेषण करते हैं क्योंकि मृत्यु-साक्षात् का क्षण ही चरम जीवन बोध का क्षण है ।... मृत्यु के साक्षात् के क्षण को नहीं, कालव्यापी परिस्थिति को अन्य सब परि-स्थितियों से अलग करके एकांत भाव से कैसे देखा, दिखाया जाय ; यह मैं बराबर सोचता रहा... और... निर्जन द्वीप से लेकर बंद हो गयी सुरंग तक अनेक परिस्थितियों की कल्पना की ।`[3] काल्पनिक स्थिति में भी लेखक का

----

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ0 64
2. वही, पृ0 47
3. वही, पृ0 164

अंतरंग दार्शनिक-मंथन में प्रवृत्त रहता है । मनोवैज्ञानिक रूप से व्यक्ति स्वयं की शून्यता लक्षित नहीं कर पाते, पर बौद्धिक और अधीत यायावर अपने भीतर का सन्नाटा भी देख सका है । `देखना है, सुनना है, घ्राण है, स्पर्श है, - सभी कुछ है, किंतु नहीं है चिंतन... वहां केवल स्तब्धता है । जीवन मानो सतह पर आ गया है और भीतर केवल सन्नाटा है ।`[1]

`एक बूंद सहसा उछली` में `विशुद्ध आत्माभिव्यंजना से संप्रेषित अन्य कतिपय प्रसंगों में भी आभ्यांतरिक तत्वों का बाहुल्य है । `कहां है द्वारका` में द्वारका यायावर के दिवास्वप्नों में उभरने वाला एक नगर-द्वीप है, एक रहस्यमयी नगरी । यह द्वीप-द्वारका वास्तविकता से परे काल्पनिक धागों से बुनी हुई है । अत: इसमें भरपूर अन्तर्मुखता वर्तमान है । सीता की जन्म-स्थली सीतामढ़ी से जनकपुर अयोध्या होती हुई चित्रकूट में समाप्त होने वाली `जय जानकी जीवन यात्रा` के दौरान यायावर के वाल्मीकि नगर के वन में हुए एक अनुभव की रचनात्मक निष्पत्ति `छाया का जंगल` निबन्ध में दिवास्वप्न नहीं है । किंतु दिवास्वप्न का आस्वाद भी है और रागदीप्त दार्शनिकता भी ।`[2] इस निबन्ध में अन्तर्मुखी की तुलना में बहिर्मुखी बिंदु अधिक है, अज्ञेय द्वारा संपादित `जन जनक जानकी` में संकलित लेखक के दो निबन्धों में मिथकीय, क्षणवादी, पाश्चात्य एपिक आदि संबन्धी विचार संकलित हैं, जो

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 177
2. रमेशचन्द्र शाह, अज्ञेय, पृ० 51

यात्रावृत्तात्मक कृतियों में निहित अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी विश्लेषण के क्रम में कदाचित् सहायक नहीं ।

(2) यात्रावृत्तांत अथवा संस्मरण

यात्रानुभव का भौगोलिक विस्तार, प्राकृतिक सौंदर्य और अनेकानेक प्रेरक संघातों का चित्रण यात्रा-वृत्त में होता है । इसका उपजीव्य देखा और भोगा हुआ अनुभव जगत ही होता है । अपने स्मृतिकोष में संचित और अंकित होने देने वाले विभिन्न यात्रानुभव संबन्धी संस्मरणों की व्यवस्थित अभिव्यक्ति से यात्रा-वृत्त तैयार होता है । अत: यात्रा-वृत्त में संस्मरणात्मक संगुफन सदैव उपलब्ध रहता है । `यात्री अपनी यात्रा के प्रत्येक स्थल और क्षणों में से उन्हीं क्षणों को संजोता है जिनको वह अनुभूत सत्य के रूप में ग्रहण करता है ।`[1] यायावर की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं, संवेदनाओं और अनुभूतियों आदि से अभिसिंचित इन अनुभूत प्रसंगों में आत्मीयता भी स्वयमेव आ जाती है जो संस्मरण की मुख्य विशेषता है । `प्राय: यात्रावृत्तांत कहने-सुनने या लिखने-पढ़ने का आनंद भी संस्मरण के ही समान रोचक और रसपूर्ण होता है - दोनों की विधि में सामंजस्यपूर्ण एकरूपता है ।`[2]

यात्रा-विवरण में संस्मरण की अपरिहार्य अन्तर्युक्ति होती है, वैसे भी जीवन-यात्रा में प्राप्त संघातों की अभिव्यक्ति संबन्धी विकलता से उत्पन्न संस्मरण

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - साहित्यकोश, डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 512
2. डा० कमलेश्वर शरण सहाय, हिंदी का संस्मरण साहित्य, पृ० 49

तत्व की सृष्टि से इंकार नहीं किया जा सकता ।`अधिकतर यात्रा-साहित्य संस्मरणात्मक होता है और इसमें यात्री अपने प्रभावों, प्रतिक्रियाओं और संवेदनाओं को महत्व देता है ।`[1]

पर यात्रा-साहित्य में संस्मरणात्मकता आत्यांतिक रूप से एक अनिवार्य शर्त नहीं । यात्रा - साहित्य और संस्मरण में द्वन्द्वात्मक संबन्ध इस अर्थ में है कि एक-दूसरे में परस्पर सामंजस्य के साथ ही एक-दूसरे को स्पष्टत: तिरने वाले तत्व भी हैं । पर्यटन की दृष्टि से मात्र भौगोलिक परिवेश और सूचनात्मक पथ का स्थूल वर्णन भी सामान्यतया यात्रा-साहित्य के अन्तर्गत ही आता है । इस बिंदु पर संस्मरण की पृथक सत्ता असंदिग्ध है । `यात्रा-साहित्य प्रमुखतया वर्णनात्मक और इसीलिए तथ्यमूलक अर्थात् वस्तुपरक होता है, इसमें संस्मरण जैसी आत्मीयता का प्राय: अभाव रहता है ।`[2] `अपने को केन्द्र में रखकर भी प्रमुख न होने देना साहित्यिक यायावर का कर्तव्य है, क्योंकि यदि लेखक का व्यक्तित्व उभरेगा तो अन्य सब गौण हो जायेगा ।`[3] इस वक्तव्य के आलोक में लेखक का यात्रा-साहित्य की उत्कृष्टता के लिए व्यक्तित्व-निरपेक्ष गुण अपेक्षित है, जबकि संस्मरण का अभीष्ट इस मान्यता के ठीक प्रतिकूल है । यात्री सभी कुछ पर रपटीली और सरसरी दृष्टि डालता है । साहित्यिक अभिव्यक्ति में संवेदनशील होकर भी यायावर की प्रसंगों से अंतरंगता अनपेक्षित हो जाती

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - साहित्यकोश, डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 513
2. डा० कमलेश्वर शरण सहाय, हिंदी का संस्मरण साहित्य, पृ० 52
3. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - साहित्यकोश, डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 512

है, जबकि लेखक की प्रसंग विशेष के प्रति एकाग्रता और अंतरंगता संस्मरण की मुख्य विशेषता है ।

गद्य के संदर्भ में हिंदी साहित्येतिहासकार आचार्य शुक्ल की लेखनी निबन्ध के अतिरिक्त अन्य गद्य रूपों पर प्रकाश नहीं डालती । परम्परित काल्पनिकता के अभाव के कारण और इसीलिए मुख्यत: मानसिक सर्जनात्मकता के सहारे चलने वाले ये गद्यरूप हिंदी में बाद में उभरे । संस्मरण, जिसका आधार व्यक्ति, घटना, यात्रा या अन्य कोई भी प्रसंग हो सकता है, की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है । संस्मरण यात्रा-साहित्य से पूर्व की स्थापित विधा है और हिंदी की विधागत शास्त्रीयता और पत्रकारिता के मध्य में स्थित है । 'अकाल्पनिक गद्य-वृत्तों की धारणा सबसे पहले संस्मरण को देखकर ही बनती है । तीव्र भावात्मक गठन और गहरी सर्जनात्मक भाषा वाले परम्परित काव्य रूप जैसे उपन्यास, नाटक, कविता इस युग में पाठक के लिए रुचिकर नहीं हो पाते और वह पत्रकारिता, जो अपने चरित्र में सूचनात्मक और वस्तुपरक होते हैं, की ओर अग्रसर होता है ।... ये वृत्त आधुनिक कला वृत्ति के अनुकूल स्वचेतनता और निर्वैयक्तिकता के विरोधी ध्रुवों के बीच समतुल्य क्षेत्र का विस्तार करते हैं ।'[1] अकाल्पनिक गद्य-वृत्तों के आरंभिक काल से ही यात्रा-साहित्य एक प्रचलित विधा रही है । जहाँ एक ओर संस्मरण से यात्रा-साहित्य के साथ एक सीमा तक अभिन्नता स्वीकृत

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - हिंदी साहित्य, तृतीय खण्ड,
   डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अन्य गद्य रूप, पृ० 540

है, वहीं दूसरी ओर दोनों के साहित्यिक विधागत विकास में पार्थक्य की विभाजक रेखा भी सुस्पष्ट और असंदिग्ध है । अज्ञेय के यात्रावृत्तांत यात्रा की तात्कालिक अभिव्यक्ति नहीं हैं । इनके यहां `व्यथा के तम में पलने वाले' यात्रा के विभिन्न दृश्य, चरित्र आदि वर्षों तक स्मृतियों में सुरक्षित रहकर ही अभिव्यक्ति पाते हैं । अत: इनके यात्रा-वृत्तों में अदृश्य भाव के साथ संस्मरणात्मकता आद्यन्त व्याप्त है । चूंकि संस्मरणात्मकता अज्ञेय के यात्रा-वृत्तों में शैली विशेष के रूप में ही प्रयुक्त है, अत: ये यात्रावृत्त संस्मरण के पर्याय नहीं । दोनों में विधागत पार्थक्य भी स्पष्ट है ।

(3) यात्रावृत्तांत अथवा आत्मकथा

आत्मकथा की विधा जीवन-वृत्त से संबद्ध होने के कारण जीवनी-साहित्य के अन्तर्गत परिगण्य है । आत्मकथा में लेखक अतीतोन्मुखी अनुभव और भोगे हुए वर्तमान से स्वयं के जुड़ाव का विवरण प्रस्तुत करता है । आत्म-कथा क्षेत्र जीवनी-क्षेत्र से अपेक्षाकृत अधिक संकुचित है । स्वयं से संबन्धित अतीतोन्मुखता और इसके संप्रेषण के क्रम में आत्मकथा लेखक तटस्थ द्रष्टा की परिधि से परे स्वयं की स्वाभाविक संपृक्ति की ओर उन्मुख हो जाता है । अनुभव-खण्ड से जुड़े परिवेश और पात्र और आत्मकथा लेखक की तत्सम्बन्धी संवेदनशील अभिव्यक्ति आत्मीयता के आवरण में ही संप्रेष्य बन पाती है । `सर्वोपरि आत्मकथा की उत्तम पुरुष में प्रस्तुति स्वाभाविक ममत्व की सृष्टि करती है ।`[1]

---

1. डा० कमलेश्वर शरण सहाय, हिंदी का संस्मरण साहित्य, पृ० 53

दूसरे के जीवन को तटस्थ, असंपृक्त या वस्तुपरक ढंग से देखने वाली दृष्टि असंदिग्ध है । पर स्वयं के जीवनानुभव को उकेरने के क्रम में तटस्थता और वस्तुपरकता आदि तत्व स्खलित हो जाते हैं और अधिकांश में वैयक्तिकता व्याप्त हो जाती है । आत्मकथा के संदर्भ में स्वयं वात्स्यायन जी का वक्तव्य उल्लेखनीय है । "जब वह आत्मकथा आत्म-कथा है ही, तब उसमें अपनी पक्षधरता और विषयों के पूर्वग्रह के लिए गुंजाइश रख ही ली गयी है ?... घटना की संरचना भीतर से कैसे दीखती थी, उस घटना के घटक स्वयं अपनी स्थिति और कर्म को कैसे देख रहे थे ?... आत्मकथा लेखक स्वयं इस बात को स्वीकारता और पहचानता चलता है कि वह घटना को भीतर से देख रहा है और उसकी दृष्टि एक अपरिहार्य पूर्वग्रह लिए हुए है ।... वह प्रयत्न कर सकता है कि अपने जीवन को दूसरों की दृष्टि से भी देख सके,... यदि संभव न हो तो समझ सके । लेकिन दृष्टि की यह विशदता, समझ की यह उदारता भी आत्मकथा-लेखक को उस पूर्वग्रह से सर्वथा मुक्त नहीं कर पाती ।"[1] निष्कर्षतः अज्ञेय के अनुसार आत्मकथा लेखक पूर्वग्रह मुक्त नहीं होता ।

आत्मकथा में निर्वैयक्तिकता एक अपेक्षित गुण है । निर्वैयक्तिकता साहित्य में एक आधुनिक युगीन मान्यता है और आधुनिक युग के तर्कशील वातावरण में आत्मचिंतन या स्वचेतनता की केन्द्रीय भूमिका भी है । इन दोनों के परस्पर द्वन्द्व या तनाव से ही उत्कृष्ट आत्मकथा निर्मिति सम्मुख आती है । "स्वभावतः निर्वैयक्तिकता और स्वचेतनता का द्वन्द्व पूरी रचना को एक कलात्मक संघटन बना देगा... । पश्चिम के कुछ कृती लेखकों की

---

1. अज्ञेय, आत्मकथा, जीवनी और संस्मरण, समकालीन भारतीय साहित्य, अंक - जनवरी-मार्च 87, पृ० 83

आत्मकथाओं में यह वृत्ति पूरी तरह प्रतिफलित होती है ।'[1]

आत्माभिव्यक्ति में अहम्मन्यता का पुट होता है । आत्मकथा लिखने के आग्रह पर मानवेन्द्र राय द्वारा दिये गये उत्तर की ओर संकेत कर 'समकालीन भारतीय साहित्य' के एक अंक में अज्ञेय ने उद्धृत किया है कि 'मैं जानता हूं कि मैं आत्मकथा कभी नहीं लिखूंगा । आत्मकथा लिखने के लिए एक विशेष प्रकार की अहमन्यता चाहिए जो मुझ में नहीं है ।'[2] पर अहं को निरस्त करने वाले अन्य दुर्लभ गुण भी हैं जिनके आवरण में जीवन की महत्वपूर्ण आत्मकथात्मक घटनाएं विशुद्ध पारदर्शी रूप में भी अभिव्यक्त होती हैं ।

यात्रा-साहित्य में भी आत्मकेन्द्रित घटनाओं का चित्रण होता है पर आत्मकथा में आत्मकेन्द्रित घटनाओं का वैयक्तिक विस्तार अपेक्षाकृत अधिक होता है । यात्रावृत्तांत में वर्णनात्मकता का स्वर प्रधान होता है, जिसमें यात्रा के क्रम में आने वाले सभी कारकों और संघातों पर यात्री की सरसरी दृष्टि पड़ती है । आत्मकथा में सभी कुछ पर पड़ने वाली दृष्टि अनुपस्थित रहती है तथा लेखक को भोगी हुई अनुभूत घटनाओं से इतर जाने की सुविधा साहित्यिक यायावर की भांति नहीं होती । आत्मीयता का भाव दोनों में ही वर्तमान रहता है । यात्रा-साहित्य वस्तुपरक तथा तटस्थता की कोटि में आता है, जबकि आत्मकथा में वांछित निर्वैयक्तिकता के पश्चात् भी वैयक्तिकता,

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - हिन्दी साहित्य, तृतीय खण्ड, अन्य गद्य रूप, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ० 539
2. अज्ञेय, आत्मकथा, जीवनी और संस्मरण, समकालीन भारतीय साहित्य, अंक - जनवरी-मार्च 87, पृ० 85

अहमन्यता आदि भाव आ जाते हैं । यात्रा-साहित्य का प्रधान पक्ष विशुद्ध भूगोल से जुड़ा होता है, जबकि आत्मकथा का भूगोल स्वजीवन की घटनाएं होती हैं । दोनों ही में संस्मरणात्मक तत्व सक्रिय रहते हैं । जिस वस्तुपरक अर्थ में आत्मकथा व्यक्तिगत जीवन के पर्यवेक्षण के रूप में सम्मुख आती है, उस अर्थ में यात्रा-साहित्य नहीं । यात्रावृत्तात्मक प्रसंग अतिरंजित और अति नाटकीय हो सकते हैं, जबकि आत्मकथा में ऐसे उपादानों के लिए अवकाश लगभग नहीं होता ।

(4) यात्रावृत्तांत अथवा रिपोर्ताज

मूलत: द्वितीय महायुद्ध के दौर में विकसित, रिपोर्ताज हिंदी गद्य का सर्वथा नवीन माध्यम है । फ्रांसीसी शब्द रिपोर्ताज अंग्रेज़ी के रिपोर्ट के निकट है जिसे हिंदी में वृत्त-निर्देशन या सूचनिका कहते हैं । सामान्यतया युद्ध, मेला, बाढ़ या किसी अन्य बड़ी घटना की पृष्ठभूमि पर रिपोर्ताज लिखा जाता है । इस माध्यम से लेखक आंखों देखी घटना के विविध प्रसंगों और व्यौरों की भीड़-भाड़ प्रस्तुत करके उनके आंतरिक संबन्ध और संगति को स्पष्ट करता है ।[1] अकाल्पनिक गद्य की कतिपय विधाओं जैसे संस्मरण, आत्मकथा, यात्रा-साहित्य आदि में जैसे चेतना में घिराई हुई स्मृतियां अंकित होती हैं, वैसे रिपोर्ताज में संस्मरणात्मकता का प्रवेश सर्वथा नहीं होता । स्वयं देखे हुए संघातों की ताजगी को उकेरने वाला रिपोर्ताज लेखक इसमें रपट की ...सी तथ्यात्मक विवरण सम्मिलित कर इसे साहित्यिक आवरण प्रदान करता है । यह कल्पना से सर्वथा परे है । घटना की तत्कालीन प्रतिक्रिया की पटभूमि पर ही रिपोर्ताज टिकता है । तात्कालिक शब्दबद्धता इसकी आवश्यक शर्त है ।

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - हिंदी साहित्य, तृतीय खण्ड, अन्य गद्य रूप, डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी, पृ० 550

`घटनाओं की तत्कालीन मार्मिक प्रतिक्रिया ही आकर्षक शैली का परिधान पहनकर रिपोर्ताज बनती है ।`[1]

आधुनिक गद्य के विकास के केन्द्र में पत्रकारिता की एक सकारात्मक भूमिका रही है । चूंकि रिपोर्ताज आज आधुनिक गद्य की स्थापित विधा है और पत्रकारिता का मूल तात्कालिकता की अभिव्यक्ति है, अत: रिपोर्ताज के साहित्यिक चरित्र में तात्कालिकता का सुनिश्चित स्थान रहता है । ध्यातव्य है कि संस्मरण और आत्मकथा की भाँति रिपोर्ताज का विकास नहीं हो सका है । `रिपोर्ताज ... अभी तक बहुत प्रचलित माध्यम नहीं है ।`[2]

स्मृतिकोष में सुरक्षित संस्मरणों की अभिव्यक्ति से ही यात्रा-वृत्त की निर्मिति होती है, जबकि रिपोर्ताज में संस्मरण तत्व नहीं होते । कई छोटी-बड़ी घटनाएं यात्रा-वृत्तांत में संकलित रहती हैं, पर रिपोर्ताज घटना-विशेष पर आधारित होता है । यात्रा-वृत्त में पत्रकारिता जैसी तात्कालिकता नहीं होती, जबकि रिपोर्ताज में यह एक आवश्यक अंग है । तथ्यपरक वस्तुपरकता की गुंजाइश रिपोर्ताज में अधिक रहती है । यात्रा के क्रम में साक्षात् होने वाले समस्त बिंदुओं में से स्वमानसिक प्रतिक्रियाओं के रूप में ग्रहण हुए संघातों को ही यात्रावृत्त लेखक विषयवस्तु बनाता है, जबकि घटनाक्रम के विस्तार को व्यक्त

---

1. आचार्य डा० दुर्गाशंकर मिश्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 249
2. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - हिंदी साहित्य, तृतीय खण्ड, अन्य गद्य रूप, डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी, पृ० 551

करने वाले रिपोर्ताज लेखक के यहाँ चयन की यह सुविधा नहीं । रिपोर्ताज में पाठकीय आस्वाद ताजा होता है । यात्रावृत्त में रिपोर्ताज से अधिक आत्मीयता रहती है । वैसे - अज्ञेय के यात्रा-साहित्य में संस्मरण के तत्व, रेखांकन के उपादान और रिपोर्टिंग का आस्वाद सभी कुछ घुलमिल गये हैं ।

o

चतुर्थ अध्याय

अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का प्रतिपाद्य

(1) व्यक्ति-स्वातंत्र्य की खोज

(2) मानवतावादी स्वर

(3) सांस्कृतिक चेतना

(4) दार्शनिक चिंतन

अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का प्रतिपाद्य

(1) व्यक्ति-स्वातंत्र्य की खोज

अज्ञेय के चिंतन और सृजन के केन्द्रीय उत्स व्यक्ति-प्रतिष्ठा और व्यक्ति स्वातंत्र्य क्रमश: नितांत वैयक्तिकता और दायित्व निरपेक्षता के अर्थ में संप्रेषित नहीं । व्यक्ति और चरित्र को परिस्थितियों की सापेक्षता में उकेरते हुए मानव व्यक्तित्व की खोज में प्रवृत्त इस लेखक के यहां स्वाधीनता व्यक्ति के व्यक्तित्व की आवश्यक शर्त ही नहीं ; मनुष्य का परम मूल्य भी है । स्वाधीनता की परिपुष्टि में सहायक सभी कारक मूल्यवान हैं । स्वतंत्रता का जातिगत अनुभव, संस्कार और अस्मिता से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । अज्ञेय के अनुसार, 'स्वाधीन होना अपनी चरम संभावनाओं की संपूर्ण उपलब्धि के शिखर तक विकसित होना है ।'[1] 'स्वाधीनता की सच्ची कसौटी 'मैं' नहीं, 'ममेतर' है ।'[2] इसी बिंदु पर लेखक ने उत्सर्ग को सच्चा और स्वाधीन कर्म बताया है । अत: लेखक की चिंतना का प्रधान मूल्य 'स्वतंत्रता मानव-मन का नहीं, मानव-आत्मा का कुसुमन है ।'[3] मूल्यहीनता या व्यक्तित्वहीनता अज्ञेय का कहीं भी अभीष्ट नहीं ।

'व्यक्ति का स्वतंत्र विकास, ऐसा स्वतंत्र कि दूसरों को भी स्वतंत्र करे ।'[4] व्यक्ति और स्वातंत्र्य का यह संबन्ध वैयक्तिक आत्मरति के सुख का स्खलन अथवा

---

1. अज्ञेय - स्रोत और सेतु, पृ० सं० 15
2. वही, 10
3. वही, 145
4. अज्ञेय - आत्मनेपद, पृ० सं० 74

अन्तर्गुहावास कदापि नहीं । डा० राय के अनुसार, 'अज्ञेय की समष्टिवादिता में एक-एक इकाई अपने विकास की सारी संभावनाओं को पूर्णता तक पहुंचाने में सक्रिय है ।'[1] व्यक्ति की प्रतिष्ठा के संदर्भ में अज्ञेय ने सर्जक के स्वयं के निराले और विशिष्ट अस्तित्व को स्वीकारा है । एक बिंदु पर लेखक 'ममेतर' को स्वाधीनता की सच्ची कसौटी तथा 'उत्सर्ग' को वास्तविक स्वाधीन कर्म मानता है तो दूसरे बिंदु पर सर्जक के वैशिष्ट्य को भी रेखांकित करता है । वस्तुत: यह अन्तर्विरोध नहीं, स्वयं लेखक के प्रिय प्रतीकों और रूपकों की सटीक व्याख्या में यह दृष्टि सहायक उपादान है । 'समष्टि की नदी में व्यक्तित्व के द्वीप, काल के सरित प्रवाह में क्षण के द्वीप, मानवता के सागर में मानवीय संपर्क के द्वीप... आदि ।'[2]

'शेखर : एक जीवनी' में घनीभूत वेदना का विज़न भी है और जीवन के पूंजीभूत अर्थों से संपृक्त क्षणों की तीव्रता भी । घनीभूत वेदना की तीव्रता को अभिव्यंजित करने वाली यही अन्तर्दृष्टि प्रत्येक बिंदु पर व्यक्तित्व और स्वातंत्र्य की निरंतर खोज में प्रवृत्त दिखायी देती है । 'बाबा मदनसिंह के कठोर जीवनानुभव के समृद्ध सूत्र हों अथवा शशि और फिर रेखा का आत्मदान, गौरा का धैर्य हो या सेल्मा की अनासक्ति - सभी वेदना की आंच में तपकर निकले हैं ।'[3] अज्ञेय-चिंतन का व्यापक सूत्र 'वेदना' न तो छायावादियों की कोरी गीली भावुकता है और न ही किसी रहस्यमय क्षेत्र की ओर पलायन । अज्ञेय के यहां 'वेदना से दृष्टि, वेदना से मुक्ति दोनों ही उपलब्ध है ।'[4]

---

1. डा० राम कमल राय - अज्ञेय - सृजन और संघर्ष, पृ० 162
2. वही, पृ० 162
3. वही, पृ० 158
4. वही, पृ० 157

`एक बूंद सहसा उछली` के `यूरोप का स्नायु-केन्द्र : बर्लिन` में कार्ल, मायर-दम्पति और मादाम मल्वारेस आदि विचित्र, पर करुण और उदात्त चरित्र इसी वेदना से स्पंदित हैं । `क्या इन सब कथाओं में हर बार वही नर नहीं झांकता जिनकी अनझिप आंखों में नारायण की व्यथा भरी है ?` `क्या यहीं कहीं वह आलोक हुआ अपनापन भी निहित नहीं, जो `उन्मोचन है : नश्वरता के दाग से` भी ?`[1]

`दु:ख सबको मांजता है ... ।` `क्या होना मात्र अकेला होना नहीं है ?` जैसी पंक्तियों के पोषक यायावर को `ईसाई सूफ़ी, गेही संन्यासी, अध्ययनशील, रहस्यवादी, अस्सी वर्ष का नवयुवक एक आश्चर्यमय व्यक्ति` लिखता है कि `मैं तुम्हारे लिए आत्मा के इसी अकेलेपन की कामना करता हूं ।`[2] वस्तुत: यह एकाकी कामना कुंठा और संत्रस्तता की ओर संकेत नहीं, वह अकेलापन बिल्कुल भी नहीं `जो मनुष्य को कंगाल बना देता है ।`[3] यायावर इस अकेलेपन की प्राप्ति की कल्पना में ही स्वयं को कृतार्थ समझेगा । व्यक्ति-स्वातंत्र्य की खोज की भरपूर अभिव्यक्ति लेखक के यात्रा-साहित्य की अपेक्षा उपन्यासों में अधिक है । `एक बूंद सहसा उछली` में तो कुछेक संबन्धित प्रसंग ही हैं । स्वातंत्र्य-तलाश की यही ललक और सूक्ष्म निरीक्षणशील अन्तर्दृष्टि यह भी लक्ष्य कर पाती है कि `ये सब लोग ऐसे संत्रस्त क्यों दीखते हैं, कौन सा भीतरी संघर्ष इन्हें साये जा रहा है ?`[4]

मृत्यु के कारण जीवन की अर्थहीनता अस्तित्ववादी दर्शन की धुरी है । व्यक्तित्व की खोज के धरातल पर अज्ञेय के कथित रूप से अस्तित्ववादी होने की

---

1. रमेशचन्द्र शाह - अज्ञेय - साहित्य अकादमी, पृ० 50
2. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 66
3. वही, पृ० 66
4. वही, पृ० 39

समीक्षा यहां समीचीन है । `एकांत में मृत्यु से साक्षात् होने पर कैसा लगता है ? अत्यन्त सूक्ष्म काल में तो ऐसी स्थिति में केवल दुर्दान्त जीवन-प्रेम उभरेगा ।`[1] अर्थात् मृत्यु का भय जीवन की आसक्ति को उत्तरोत्तर उकसायेगी । अत: राम स्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में, `यहां मृत्यु की परिकल्पना से जीवन के रस और सार्थकता की बात सम्मुख आती है जो प्रकारांतर से अस्तित्ववाद के प्रतिकूल है । अज्ञेय नश्वरता को मानवीय सर्जनात्मकता के लिए एक प्रेरक शक्ति मानते हैं ।`[2]

स्वातंत्र्य और नैतिकता के बिंदु पर अज्ञेय की यह मान्यता है कि स्वातंत्र्य-हीन नैतिकता अर्थहीन है । प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने रेखांकित किया है कि `नैतिक विशेषण मूलत: व्यक्ति का है न कि समाज का, क्योंकि `स्वातंत्र्य` भी व्यक्ति का ही अधिकार है ।`[3] लेखक के वक्तव्य `शेखर की स्वातंत्र्य की खोज समाज की खोखली सिद्ध हो जाने वाली मान्यताओं के बदले व्यक्ति की दृढ़तर मान्यताओं की प्रतिष्ठा की कोशिश... ` का उल्लेख कर प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने यह प्रतिपादित किया है कि `अंतत: समाज का नैतिक धरातल ऊंचा किया जा सकता है और इसके लिए फिर व्यक्ति स्वातंत्र्य ही आधारभूत मूल्य सिद्ध होता है ।`[4] पर जब चिंतन की समूची प्रक्रिया में वरण की स्वतंत्रता का ही नकार हो तब अनिच्छा से वरण किये गये मनुष्य की नैतिकता का आधार भी स्वभावत: अस्वीकार ही में होगा ।`पृथ्वी पर आये तो अपनी इच्छा से नहीं आये । पार्थिव जीवन का हमने वरण नहीं किया । तब वरण पर आधारित नीतिशास्त्र का प्रमाण क्या है ?`[5] दार्शनिक चिंतन के अनुरूप लेखक की `प्राची-प्रतीची` में यह बिंदु और भी स्पष्ट है ।`मनुष्य

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 144
2. डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 122
3. वही
4. वही
5. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 45

की नैतिकता का क्या अर्थ है, सिवा इसके कि वह अपने कर्म के लिए उत्तरदायी है ? लेकिन जिस कर्म का उसने स्वेच्छा से वरण नहीं किया, वह उसका कर्म कैसे हो सकता है ?'[1]

वैज्ञानिक अस्तित्ववादी यास्पर्स अज्ञेय से एक वार्ता के दौरान मनुष्य की नगण्यता को स्वीकारते हैं । यह 'नगण्यता' वैज्ञानिक प्रगति का परिणाम है या कि मतवादों का ? इस वृत्त में संबन्धित प्रश्न का वांछित उत्तर अनुपलब्ध है । 'यंत्र-शिल्प का समान उपयोग करने वाले मतवादों में क्या यह संभव नहीं कि एक भरसक व्यक्ति की स्वतंत्रता को पुष्ट करने या बचाने की कोशिश करे' - अज्ञेय की इस संभावना पर 'आधुनिक परिस्थिति में मानव को अपनी पसंद की व्यावहारिक रूप देने की छूट नहीं है ' कथन 'नगण्यता' को अपेक्षाकृत अधिक गहराई से उद्घाटित करता है ।' ... बहुत लोग हैं जो सर्वात्मवाद को स्वीकार कर लेंगे, इसलिए नहीं कि वे पसंद करते हैं, केवल इसीलिए कि उनकी पसंद का कोई मूल्य नहीं है ।'[2] अत: जहां नगण्यता-बोध मूल्यहीनता के स्तर तक हो और अनिच्छापूर्वक वरण पर आधारित और इसीलिए अप्रामाणिक नीतिसिद्धांत हो वहां एक अधीत चिंतक के यहां व्यक्ति-स्वातंत्र्य के सतत खोज की ललक स्वाभाविक है । सामाजिक विद्रोह और क्रांति से उर्जस्वित होकर भी शेखर के व्यक्तित्व की अन्तर्मुखता और विशुद्ध व्यक्ति-पक्ष स्पष्ट है । अज्ञेय के यहां व्यक्ति-स्वातंत्र्य का व्यापक सामाजिक सरोकार है । पर 'शेखर' की अन्तर्मुखता के माध्यम से वैयक्तिक इयत्ता पर बल भी कम नहीं । रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार,'व्यक्तित्व की स्वायत्तता किसी भी सर्जनात्मक संचरण के लिए आवश्यक है, पर इसके लिए जन-शक्ति के संघात को झेल कर उसे शक्ति-स्रोत बनाना भी उतना ही आवश्यक है ।'[3] 'एक बूंद सहसा उछली' में यूरोप की संस्कृति में मानव-स्वातंत्र्य की आकांक्षा

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 199
2. वही, पृ० 43
3. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 131

के साथ ही अपने अस्तित्व के लिए व्यापक-स्तर पर मोह भी है ।

(2) मानवतावादी स्वर

`एक बूंद सहसा उछली` के `निवेदन` से अज्ञेय के मानवतावादी चिंतन में जीवन के प्रति उत्कट प्रेम और मूल्यबोध दोनों की केन्द्रीय भूमिका की संपुष्टि होती है । `जीवन-प्रेम हो तभी तो `संपन्न` और `दरिद्र` की पहचान के आधार आर्थिक मूल्य न रहकर मानवीय मूल्य हो जाते हैं । जीवन के मूल्य ही तो मानवीय मूल्य हैं ।`[1] `मनुष्यता, मानवीयता आदि संज्ञाओं से अभिहित होने वाले साहित्य की आधारभित्ति ही मानवत्व है । महाभारतकार व्यास ने `नहिं मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किंचिद` कहकर संभवत: इसी महाभाव को परि-पुष्ट किया है ।`[2] समूची सृष्टि के प्राणियों में चेतनासंपन्न और विवेकशील मनुष्य की अभिजात्य सत्ता असंदिग्ध है । स्वयं लेखक के ही शब्दों में, `मानव में मेरी श्रद्धा है । मानव-मात्र को मैं अभिजात मानता हूं ।`[3]

सामान्यतया लेखक की सृजनधर्मी मानवीय दृष्टि व्यापक जन-जीवन की मानवीय सहानुभूति के अत्यन्त सजीव और स्पंदनशील संगुफन से मानवीयता सम्मुख आती है । विद्रोह का व्यापक सामाजिक सरोकार सिद्ध करने वाले जिस पूर्ववर्ती रचनाकार के यहां `बिगाड़ना ही धर्म है, बनना तो अपने बाप है` इस दृष्टि की प्रधानता है, वहीं उत्तरकालीन लेखक के यहां `दुनियां में बहुत कुछ बदलता चाहता हूं, कुछ उखाड़-पछाड़ कर भी ; पर जीवन के प्रति मेरा बुनियादी भाव

---

1. एक बूंद सहसा उछली - निवेदन
2. प्रभाकर मिश्र - निबन्धकार अज्ञेय, पृ० 67
3. एक बूंद सहसा उछली, निवेदन

आक्रोश का नहीं है । जीवन एक विस्मयकर विभूति है, और मानवीय संबन्ध और भी विस्मयकर...` जैसी धारणा प्रतिपादित है । मानवीय संबन्ध को जीवन से भी दृढ़तर विस्मयकर विभूति मानने वाले अज्ञेय के चिंतन के उत्तरार्द्ध में करुणा रेखांकित होती है । `कहीं-न-कहीं उन पर गौतम बुद्ध की करुणा तथा ईसा-मसीह की आत्मपीड़ा का गहरा प्रभाव है ।... अरी ओ करुणा प्रभामय` की तथा बाद की कविताओं में उस `प्रभामय करुणा` का खुला दर्शन होता है । उसी करुणा ने उन्हें और गहरे अर्थों में मानवीय बनाया है तथा संपूर्ण मानव जाति से जोड़ा है ।`[1]

`बहुधा मानव जाति की उन्नति और सुधार की प्रचेष्टा में मानव से प्रेम नहीं, मानव के प्रति अवहेलना या घृणा की भावना काम करती है ।`[2] वर्तमान परिवेश में बुद्धिजीवियों की मानव के प्रति संवेदना का निरा अनुकम्पा का रूप ग्रहण कर लेना इस वक्तव्य में निहित आशंका का ही विस्तार है । अज्ञेय ने स्वीकारा है कि `प्रेमचंद को मानवता से प्रेम था । हम अधिक से अधिक मानवता की प्रगति मात्र चाहते हैं ।`[3] वस्तुत: यह प्रेमचंदीय सामाजिक यथार्थ से अज्ञेय के वैयक्तिक यथार्थ तक मानवीय दृष्टि का संक्रमण है ।

`एक बूंद सहसा उछली` के `खुदा के मसखरे के घर : असीसी` में पूर्ववर्ती `रसिकराज` और परवर्ती `शरीर के प्रति घोर अनासक्त और सच्चा जितेन्द्रिय संत फ्रांसिस द्वारा प्रतिपादित `अकिंचनता के सिद्धांत` के उपदेशपरक वक्तव्य में मानववाद का चरम उत्स द्रष्टव्य है । `रोगियों की सेवा करो - - - कोढ़ियों

---

1. डा० राम कमल राय - अज्ञेय - सृजन और संघर्ष, पृ० 206
2. नरेन्द्र मोहन, अज्ञेय का कथा-साहित्य, स्वातंत्र्य की खोज, `आजकल` - जून 1987, पृ० 8
3. वही, पृ० 8

के घाव धोवो... तुम्हें खुले हाथों जो मिला है, उसे खुले हाथों लौटाओ... सोना-चांदी मत रखो, अण्टी में पैसा मत रखो, न झोला ; न दूसरी पोशाक, न जूता, न लाठी । जो श्रमिक है वह उतने का ही अधिकारी है जितना वह श्रम से कमाता है ।`[1]

`एक बूंद सहसा उछली` के चाहे `बर्लिन` वृत्त में यायावर की डायरी में निबद्ध कार्ल, मायर दंपति और मादाम अल्वारेस का चरित्र हो या `अरे यायावर रहेगा याद` के वैज्ञानिक गुरु काम्पटन`...`व्यथा के तम में नहाये हुए` इन चरित्रों में स्थूल यात्रा से इतर मानवीय संबन्धों की एक गूढ़ यात्रा भी दिखायी देती है । देश-विदेश, जंगल-रेगिस्तान सर्वत्र यायावरी में स्वयं के व्यक्तित्व का परिहार और अन्यों से पहचान निहित होती है । `यात्रा का अर्थ ही है दूसरों के बीच सामंजस्य, समन्वय, आप्तकामी राग` ।[2] `एक बूंद सहसा उछली` के बहुरंगी चरित्रांकन में एक ओर मस्त और फक्कड़ चरित्र हैं तो दूसरी ओर राष्ट्रीयतावादी, दार्शनिक और साहित्यकार चरित्रों की भी कमी नहीं है । असीसी के फ्रांसिस, फ्रेंच मार्न्सयो और लिफ्ट की बालिका के प्रति यायावर के हृदय का रागात्मक भाव व्यक्त है । यायावर के मानवतावादी व्यापकत्व में क्रांतिकारिता, विनोदप्रियता, विद्वता, हंसोड़पन, फक्कड़पन आदि भावों का विरल आस्वाद उपलब्ध है ।

मानवतावादी प्रसंगों में विलम कर चलने वाला लेखक मानवीय औदात्य को स्खालत करने वाले बिंदुओं पर क्षुब्ध भी है । `मौत की घाटी` वृत्त में एक पहाड़ी द्वारा यायावर की `कोई वैसी वासना` की पूर्ति हेतु पूछने पर `तीव्र ग्लानि के झोंके से स्तब्ध` यायावर स्मरण करता है कि `लारेंस ने ठीक लिखा है कि `मानव

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 30
2. डा० ओम प्रकाश अवस्थी - अज्ञेय - गद्य में, पृ० 105

की बू मानव को असह्य हो गयी है ... इस कथन की सच्चाई का अनुभव वहां हर समय होता रहा ।`[1] पहाड़ियों की आरोपित नीतिभ्रष्ट संहिता के विश्लेषण के माध्यम से लेखक ने तथाकथित सभ्य मैदानी लोगों को पर्वतीय अध:पतन का मूल माना है । मदोन्मत मैदानी सभ्य मानव ने `पहाड़ों का सौन्दर्य विकृत कर दिया है... हम लोगों ने भी पहाड़ों की पुण्य भूमि पर पतन, रोग और मृत्यु की एक गहरी रेखा खींच दी है ।`[2] मानवीय मूल्यों के अनुरूप `संपन्न` और `दरिद्र` की पहचान के कायल लेखक अपने गुरु वैज्ञानिक काम्पटन के वक्तव्य पर उनकी ओर देखता ही रह जाता है । `रुपया कभी-कभी ही जायेगा, हमेशा नहीं ।... मगर मानव में विश्वास खोकर तो सारा जीवन दु:खी हो जायेगा ।`[3]

`यूरोप की अमरावती : रोमा` मशीनी प्रभावानुरूप `तनिक और तेज चलकर बहुत कुछ लपक लेने` के साथ ही यूरोपीय यांत्रिक सभ्यता का व्यक्ति के ऊपर निरंतर दबाव सम्मुख लाता है, जहां के पूंजीवादी समाज में व्यक्तित्व का लोप और अजनबीपन भी प्रकारांतर से रेखांकित होता है ।`मानवतावाद` शब्द यद्यपि इसाई मिशनरी और अन्य धर्मानुयायी भी दोहराते हैं, तो उसमें मानव को एक मेढ़-समुदाय का मेमना मानकर ही ।`[4]

अज्ञेय के चिंतन में जिस तरह `स्वतंत्रतत्रा` एक मूल्य है, उसी तरह मानवता भी ` मानव का जो अंश सर्वाधिक असंपृक्त, अनासक्त है... वह अंश ही सबसे अधिक मानव है ।`[5] अनासक्ति और असंपृक्ति के मूल में उत्सर्ग-भाव प्रधान होता है और

---

1. अरे यायावर रहेगा याद, पृ० 133
2. वही, पृ० 135
3. वही, पृ० 71
4. डा० प्रभाकर माचवे, `अज्ञेय` का चिंतन, `आजकल`, जून 1987, पृ० 4
5. डा० राम कमल राय - अज्ञेय - सृजन और संघर्ष, पृ० 160

इसी उत्सर्ग से रचनाकार में एक नवीन चेतना का संचार होता है । मानवता मूलत: और सारत: अज्ञेय के यहाँ मानव की सृजनधर्मिता में है और `जो वस्तु `सृजन` की गयी है, `इन्स्पिरेशन के क्षण में रची गयी है, प्रतिभा-प्रसूत है, वही सुंदर और शुभ है ।`[1] सृजनधर्मिता साहित्य की आधारभित्ति है और `साहित्य का प्रयोजन मूल्यान्वेषण की सृजनशील मानवीय चेतना में निहित है ।`[2] यात्रा-साहित्य से इतर अज्ञेय के काव्य में इनका मानवतावादी स्वर अन्तर्विरोधों से ग्रस्त भी दिखायी देता है । जैसे - `मानव का रचा हुआ सूरज । मानव को साप बनकर सोख गया ; - यहाँ मानव के रचे हुए किसी भी मूल्य की मूल्यवत्ता संशयग्रस्त नहीं ? फिर भी यात्रा-साहित्य में इस प्रकार के अन्तर्विरोध प्राय: नहीं हैं ।

(3) सांस्कृतिक चेतना

मूलत: समूहवाचक भाव को व्यंजित करने वाली `संस्कृति` के बहुआयामी फलक में धर्म, दर्शन, साहित्य-कला आदि सभी समाविष्ट हैं ।`संस्कृति एक समग्र समाज की कारयित्री अथवा निर्मात्री प्रतिमा होती है ।`[3] अज्ञेय के यहाँ शिक्षा, जो संस्कार देती है, संस्कृति का एक महत्वपूर्ण उपादान है । `संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी । इसलिए जातीय संस्कारों को भी संस्कृति कहते हैं ।`[4] चूंकि संस्कार का अभिप्राय संशोधन और परिष्कार करना है अत: संस्कृति व्यापक अर्थों में जीवन की पहचान, उसका शोधन और परिष्करण है । अज्ञेय के संस्कृति-चिंतन के महत्वपूर्ण दस्तावेज `धार और किनारे` के उद्धरण के अनुसार,`संस्कृति मूलत: एक मूल्यदृष्टि है ।`[5] यहाँ मूल्यदृष्टि की परिवर्तन-

---

1. अरे यायावर रहेगा याद, पृ० 126
2. प्रभाकर मिश्र - निबन्धकार अज्ञेय, पृ० 85
3. अज्ञेय - धार और किनारे, पृ० 135
4. प्रभाकर मिश्र - निबन्धकार अज्ञेय, पृ० 75
5. वही, पृ० 75

शीलता से सांस्कृतिक बदलाव भी रेखांकित होता है । संस्कृति और इतिहास का परस्पर गहरा संबन्ध है । `ऐतिहासिक संदर्भ खो कर `दिशाहीन-संस्कृति` मरुस्थलोन्मुख हो जाती है और सांस्कृतिक संदर्भ खोकर इतिहास संवेदनशून्य-मृतप्राय ।`[1] वसुधैव कुटुम्बकम् की सी व्यापकता की पोषिका संस्कृति में सभी संकीर्णताओं से मुक्ति और मानवता के अगाध विस्तार से तादात्म्य का लक्ष्य निहित होता है । कार्ल यास्पर्स से एक भेंट के दौरान अज्ञेय ने यूरोपीय भ्रमण के मूल में भारत और यूरोप के सांस्कृतिक जीवन में निहित समान और असमान तत्वों की खोज को रेखांकित किया है । दोनों के सांस्कृतिक दाय संबन्धी असमान तत्वों के प्रसंग में लेखक ने तीन भिन्न सांस्कृतिक प्रणालियों का उल्लेख किया है - पश्चिम की ईश्वरपरक संस्कृति, चीन की लौकिक संस्कृति तथा भारतीय धर्म-विश्वास-विहित लौकिक संस्कृति । `ईसाई के लिए धर्म-विश्वास की एकता और एकरूपता आवश्यक है और चीनी के लिए आचरण की । ... भारतीय परंपरा में आचरण की एकरूपता प्रतिष्ठित होने के अनंतर ही धर्म-विश्वास में विविधता की छूट है । केवल विविधता की अनुपस्थिति की नहीं ।`[2] भारतीय संस्कृति की प्राण-विशेषता `अनेकता में एकता` की अवधारणा के मूल में यही `आचरण की एकरूपता की प्रतिष्ठा के अनंतर `धर्म-विश्वास में विविधता की छूट है ।` अन्य यात्रावृत्तात्मक कारकों या उपादानों से `एक बूंद सहसा उछली` में ऐतिहासिक, पुरातात्विक और सांस्कृतिक स्रोतों पर अपेक्षाकृत अधिक चिंतन-विश्लेषण उपलब्ध है । `पाण्डवों के किले`, `सिकन्दरा` और `ताजमहल` आदि ऐतिहासिक-पौराणिक स्थलों से ही भारतीय सांस्कृतिक विरासत की समृद्धि संभव नहीं, शुद्ध सामाजिक सांस्कृतिक `प्रवीन` का स्पंदन आवश्यक है ।

---

1. प्रभाकर मिश्र - निबन्धकार अज्ञेय, पृ० 78
2. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 40
3. वही, पृ० 22

`पुराने नगरों का असली जीवन उसकी नयी और चौड़ी सड़कों में नहीं बल्कि पुरानी और संकरी गलियों में पाया जाता है ।`[1] `रोमा और नेपोली से लेकर स्टाकहोम तक... गलियों के प्रति ममता और लगाव पाया जाता है ।`[2] वस्तुत: यांत्रिक उन्नति के कारण लुप्तप्राय होती जा रही पुरानी संस्कृति के प्रति यूरोपवासियों की यह करुण दृष्टि है । स्थापत्य की विशेषता फ़िरेंज़े की गलियों में भी पूर्ववत जीवंत है । `फ़िरेंजे की हर गली मानो एक चित्र-वीथि है, पत्थर के गज का हर खण्ड मानो शिथिल इतिहास का एक खण्ड है ।`[3] तक्षशिला, नालंदा और सारनाथ के खण्डहर अज्ञेय के लिए `सांस्कृतिक विकास के - समष्टि के अनुभव पर आधारित जीवन की उन्नतर परिपाटियों के आविष्कार के कीर्तिस्तम्भ हैं ।`[4] स्थान विशेष के ऐतिहासिक रूप और ऐतिहासिक खण्डों आदि की रक्षा से वहां के जीवन की संपूर्णतर छवि और सांस्कृतिक गहरायी सम्मुख आती है । इस दिशा में नागरिक कर्तव्य सर्वोपरि है ।`बनारस का अद्वितीय गंगा तट और उसके ऐतिहासिक घाटों की चिंता सबसे पहले बनारसियों को होनी चाहिए, राज्य या केन्द्र की सहायता बाद की बात है ।`[5] सामाजिक अनुशासन, शिक्षा और विवेक से ओतप्रोत इसी नागरिक कर्तव्य से यायावर का साक्षात्कार `फिरेंज़े` में हुआ है, जहां के साधारण नागरिक में भी `अपनी प्राचीन परंपरा का अभिमान, अपनी भाषा के प्रति निष्ठा, समकालीन सांस्कृतिक जीवन में अपनी अपनी सुंदर नगरी का सम्मान रोम से ऊंचा बनाये रखने का विशिष्ट हठ है ।`[6]

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 22
2. वही, पृ० 189
3. वही, पृ० 23
4. अरे यायावर रहेगा याद ?, पृ० 23
5. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 99
6. वही, पृ० 19

पाश्चात्य सांस्कृतिक अवयवों की भारतीय सांस्कृतिक साक्ष्यों से तुलना स्थान-स्थान पर दिखायी देती है । स्वीडन के लोक-जीवन के केन्द्र रात्विक मेले का `सहज देहातीपन और रंगीनी` लेखक को भारतीय पहाड़ी मेलों की याद दिलाती है । अभिप्राय यह कि यायावर यूरोपीय तुलना के लिए दिल्ली, बनारस, पर्वतीय क्षेत्र आदि सभी कुछ को साथ लेकर गया है ।

भारतीय संस्कृति के आचार-विषयक मूलाधारों के अधिकांश स्रोतों का हमारे मिथकीय ग्रंथ रामायण और महाभारत आदि में उपलब्ध होने से सांस्कृतिक अवदानों में मिथक की विशेष महत्ता सिद्ध होती है । `एक बूंद सहसा उछली` लेखक की सांस्कृतिक यात्रा में मिथक के कतिपय पड़ाव भी हैं । जैसे -`डेनमार्क की देवी गोफ़ियन को वर मिला कि स्वीडन की जितनी भूमि पर वह दिन भर में हल चला लेगी, उतनी भूमि उसे मिल जायेगी । अपने चारों पुत्रों को हल में परिवर्तित करके गोफ़ियन ने हल चलाना शुरू किया और इस प्रकार सीलैण्ड डेनमार्क का अंग हुआ ।`[1]

`खुदा के मसखरे के घर : असीसी`, `यूरोप की अमरावती : रोमा`, `बीसवीं शती का गोलोक` आदि यात्रावृत्तान्त सांस्कृतिक शब्दावली में पिरोये `एक बूंद सहसा उछली` के तमाम शीर्षक आलोच्य यात्रा-साहित्य में उपलब्ध सांस्कृतिक अर्थ-वत्ता को उद्घाटित करने के साथ ही यायावर की सांस्कृतिक जिज्ञासा और निष्ठा को भी प्रमाणित करते हैं । व्यक्ति-स्वभाव और व्यक्ति-चरित्र की पड़ताल से लेखक वहां की सामाजिकता को टटोलता है जो उस देश की कला और साहित्य की सापेक्षता में वर्तमान है । इस प्रसंग में `फ़िरेंज़े` और `एक दूसरा फ्रांस` आदि वृत्त उल्लेखनीय हैं । कहीं-कहीं संस्कृति के मूल उत्स की प्रक्रिया में सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों का विवेचन-विश्लेषण भी दिखाई देता है ।

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 168

भारतीय सांस्कृतिक गुरुता की आधारभित्ति `वसुधैव-कुटुम्बकम्` का विराट् आदर्श है । विश्वशक्ति की दुहाई के पीछे यत्नपूर्वक फैलायी जा रही शस्त्र-स्पर्धा और सीमा-संबन्धी द्वन्द्व के वर्तमान परिवेश में भी अज्ञेय के लिए तूरखम पर्वत `मर्यादापर्वत` है ।`... और यह सोचते हुए उसके भीतर युगों के संस्कार, शताब्दियों की सांस्कृतिक परंपराओं के तार धीरे-धीरे स्वरित हो उठे ; भारत का भारतत्व, उसका प्राणतत्व बोलने लगा । भारत, नीचे क्षितिज स्पर्शी असीम सागर से वेष्टित और ऊपर नभचुम्बी हिमालय के अंचल से क्षादित...।`[1] आगे `अनेकता में एकता` जैसी भारतीय संस्कृति की अद्भुत त्वरा के प्रसंग में लेखक लिखता है कि ` ... भारत की संस्कृति एक जड़ धातु-पिंड नहीं है, फिर चाहे वह धातु स्वर्ण ही क्यों न हो, वह निधि है जिसकी मंजूषाओं में नाना रत्न संगृहित हुए हैं और होते रहेंगे ; वह एक परंपरा है जिसमें मानव का ज्ञानालोकित उद्योग कड़ी-कड़ी जोड़ता रहा है ।`[2]

परम्परा आधुनिकता के सागर में नवीन लहर का बोध कराती है । समूची परंपरा को अस्वीकार कर आधुनिकता निराधार और क्षीण ही नहीं होती, विकृति और सड़ांध का निष्फल पोसर भी हो जाती है । परंपरा के नाम पर अतीतोन्मुखी व्यामोह से उत्पन्न पुनरुत्थानवादी दुराग्रहों से समाज आज भी आक्रांत है, बल्कि पहले से भी अधिक । ऐसे में अज्ञेय की मान्यता है कि `परंपरा के नाम पर जो सहस्र वर्ष या उससे अधिक पुराना है उसी को इंगित करने के हम इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि इस बात को भूल जाते हैं कि परंपरा में जो पूर्वापरत्व निहित है, वह तभी सार्थक हो सकता है, जबकि पूर्व के साथ अपर भी हो ।`[3]

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? पृ० 58
2. वही, पृ० 59
3. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 11

`वत्सल निधि` द्वारा आयोजित `जानकी जीवन-यात्रा` मूलत: एक सांस्कृतिक यात्रा रही है । इसके केन्द्र में `पुरानी पारम्परिक पुरागाथाओं में जीवंत बनी रहनेवाली लोकचेतना को पहचानने, उससे अपने को नये सिरे से जोड़ने और उसमें नये अर्थ भरने की दृष्टि और आकांक्षा भी रही है ।`[1]

शहरी होने की नक़लची प्रवृत्ति ने तथाकथित सभ्यता को कृत्रिमतापूर्वक परिवेष्टित यांत्रिक संसाधनों के बीच आरोपित कर दिया है । मानो अवकाश प्राप्ति के समय रेस खेलना, सिनेमा देखना और नहीं तो बैठे-बैठे बोर होना ही सही अर्थों में सभ्य होना हो ! सभ्यता आत्मतत्व से विछिन्न कर वस्तुओं से जोड़ती है । `संस्कृतियां आत्मसंस्कार हैं, सभ्यताएं वस्तुओं के निर्माण और उपभोग की दीक्षा ।... संस्कृतियां सर्जनशील होती हैं या हो सकती हैं ; सभ्यताओं का संबन्ध निर्मितियों तक ही रह जाता है ।`[2] लोकजीवन में प्राय: साक्षरता का अभाव होता है, पर शिक्षा संस्कृति की एकमात्र कसौटी नहीं । वेल्स की लोक-संस्कृति की समृद्धि पर विभोर यायावर ने उद्धृत किया है कि `वेल्स की परंपरायें सब ग्राम जीवन की परंपरायें हैं । सारे यूरोप में कदाचित यही प्रदेश ऐसा है जहां काव्य-गायन की परंपरा अक्षुण्ण बनी है, जहां किसान-कमकर स्वयं वर्णवृत्तों में कविता करते और वाद्यों के साथ गाकर सुनते हैं ।`[3] इस कसौटी के समानांतर ही भारतीय लोक-संस्कृति, जो आज तथाकथित सभ्य महाप्रभुओं की कृपानुसार हाशिये पर है, के प्रति आस्था भी निदर्शित है । `नगर में बसकर हर शनिवार को रेस खेलने वाले या रविवार को सवेरे के शो में सिनेमा देखने वाले अनिवार्यतया उस ग्रामवासी निरक्षर से अधिक संस्कृत नहीं हैं जो आल्हा और

---

1. डा० राम कमल राय - शिखर से सागर तक, पृ० 171
2. काया का जंगल, पृ० 29
3. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 104

चौपाई गाता है, विरहे के दंगल में जाता है, या भाँड़ों द्वारा की गयी समकालीन सामाजिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों की व्यंग्य आलोचना में रस लेता है ।`[1]

सहज घरेलूपन का भाव उत्पन्न करने वाला लंदन यायावर के यहाँ कई अर्थों में `हिंदुस्तानी लंदन` है । इसलिए नहीं कि वह हम पर शासन कर चुके गौरांग महाप्रभुओं की स्थली है । इसलिए भी नहीं कि वह यांत्रिक तड़क-भड़क के उन्माद में निमग्न है । `रोम और पेरिस की तुलना में लंदन कुरूप है, स्टाकहोम और कोपेनहागेन की तुलना में गंदा, बर्लिन की तुलना में शिथिल और निकम्मा ।`[2] लेखक की लंदन-आत्मीयता के मूल में कला-प्रेमी अंग्रेजों द्वारा हमारे मूल्यवान सांस्कृतिक उपकरणों का अपने देश में स्थानांतरित कर सुरक्षित रहने देना है । इस लंदन की ओर अपने मूल्यवान सांस्कृतिक चिन्हों की पड़ताल हेतु उन्मुख होना पड़ सकता है ।

भारतीय संस्कृति के समान और असमान साद्यों के समानांतर यूरोपीय सांस्कृतिक जीवन की पहचान `एक बूंद सहसा उछली` के समूचे यात्रानुभव में दिखाई देती है । स्थान विशेष की जातीय संस्कृति को वहाँ के नागरिक जीवन के आचार-व्यवहार के आलोक में विश्लेषित कर लेखक निष्कर्ष तक की यात्रा करता है ।`जैसे अंग्रेज मज़ाक करता है और हंसता भी नहीं है, या सख्य चाहता है पर बोलता नहीं ;` जैसी टिप्पणी हो या अन्यत्र लंदन और पेरिस और स्टाकहोम और कोपेन हागेन के नागरिक जीवन की सूक्ष्म तुलनात्मक प्रस्तुति - सर्वत्र यायावर ने गहरी सांस्कृतिक हुबकी लगायी है ।

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 105
2. वही, पृ० 75

(4) दार्शनिक-चिंतन

सृजनात्मक कर्म से दार्शनिक साधना की श्रेष्ठता संबन्धी पाश्चात्य मान्यता का जयशंकर प्रसाद ने `काव्य और कला` निबन्ध में खण्डन कर सृजनशील कर्म को दार्शनिक साधना के समकक्ष होने की प्रतिष्ठा की है । अज्ञेय के समूचे यात्रा-साहित्य में सबसे अधिक दार्शनिक आग्रह `एक बूंद सहसा उछली` में विद्यमान है । विशुद्ध दार्शनिक मतामत के मूल्यांकन में स्वयं की अयोग्यता ज्ञापित करते हुए यायावर ने संप्रेषित किया है कि `जो सच है वह मैं जानूं, इस शुद्ध दार्शनिक जिज्ञासा से मेरी जिज्ञासा कुछ भिन्न है, कि मैं जो लिखूं वह सच हो । मैं मान लेता हूं कि वह जिज्ञासा शुद्ध दार्शनिक जिज्ञासा से कुछ घटिया दर्जे की है ।`[1] यहां स्पष्ट ही यायावर ने साहित्य की तुलना में दर्शन को अधिक मान्यता दी है । पर साहित्य भी दर्शन से अछूता या दर्शन-निरपेक्ष नहीं होता । `मैं उस दुनियां को समझना चाहता हूं जिसमें मैं कहानी-उपन्यास के पात्र पाता हूं, जिसमें उनके चरित्र बनते हैं, उनकी कर्म-पद्धति प्रकट होती है और उनको प्रेरित करने वाली चिंतन और भाव-प्रवृत्तियां रूप लेती हैं ।`[2] इस वक्तव्य से लेखकीय जिज्ञासा का सामाजिक प्रवृत्तियों और चिंतनधाराओं से गहरा सरोकार सम्मुख आता है ।

स्वयं की दार्शनिक स्थिति की मीमांसा करते हुए लेखक सोचता है कि `पर अपने को आस्तिक कहते हुए मुझे संकोच होता है । यद्यपि मैं जानता हूं कि मैं नास्तिक भी नहीं हूं ।`[3] यहां नास्तिकता के प्रति नकार तथा आस्तिकता के

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 41
2. वही, पृ० 41
3. वही, पृ० 47

लिए संकोच से यायावर का आस्तिक भाव-बोध ही सम्मुख आता है । अन्यत्र अपने दर्शन के मूल स्रोत व्यक्ति-स्वातंत्र्य के संदर्भ में अज्ञेय ने लिखा है कि `सत्ता उसी समाज में होती है जो स्वतंत्र हो और समाज वही स्वतंत्र होता है जिसका अंग व्यक्ति स्वतंत्र हो और अपने स्वातंत्र्य के उपभोग के लिए सामाजिकता का वरण करता हो । सब सामाजिक संपर्कों और संबन्धों की मूल प्रेरणा है व्यक्ति की आध्यात्मिक स्वतंत्रता की खोज ।`[1] अत: आस्तिकता किसी क्षेत्र विशेष में पलायन नहीं, समता और आध्यात्मिक स्वतंत्रता में उन्मिलन है ।

आध्यात्मिकता का सबसे समृद्ध अनुभव लेखक को समूचे यूरोप के वैचारिक-सांस्कृतिक प्रेरणा के सूत्रधार `एक दूसरा फ्रांस` अर्थात् गोपन फ्रांस में `धिर-क्वी-वीर` मठ में होता है । मठ-वनस्थली की तेजोमय शांति-व्याप्ति और गहन आत्मिक-तोष पर विस्मित यायावर उद्धृत करता है कि `यह क्षेत्र यदि रहस्यमय और गोपन है तो किसी छिपाव के अर्थ में नहीं, बल्कि इसी अर्थ में कि वह आभ्यांतर है, आध्यात्मिक है - उसी अर्थ में जिसमें कि वह धर्म भी गोपन होता है और ईश्वर धर्म का प्रकाशक न होकर गोप्ता हो जाता है ।`[2] यहां यायावर को यात्रा-वृत्तात्मक प्रसंगों का उल्लेख कर `सबको समोने वाले विराट` से प्राप्त `दिव्य मौन` की अवहेलना अभीष्ट नहीं । संबन्धित संदर्भ में `दिव्य मौन` से अभिसिंचित अज्ञेय की कविता उल्लेखनीय है --

`पर सबसे अधिक मैं
वन के सन्नाटे के साथ मौन हूं, मौन हूं -
क्योंकि वही मुझे बतलाता है कि मैं कौन हूं,
जोड़ता है मुझको विराट् से

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 144
2. वही, पृ० 63

जो मौन, अपरिवर्त है, अपौरुषेय है,
जो सबको समोता है ।...`[1]

``एक दूसरा फ्रांस` में यायावर को प्रकारांतर से एक दूसरा यूरोप, `गोपन-यूरोप` दिखाई देता है `जहां आध्यात्मिकता है, मानसिक शांति है और रूढ़ि से हटकर स्रष्टा के प्रति समर्पण भाव है ।`[2]

साहित्यकार की समस्या मूलत: संवेदनिक और रागात्मक होती है । यूरोपीय तुलना के संदर्भ में जिस परिमाण में अज्ञेय के यहां दिल्ली और बनारस के साक्ष्य उपलब्ध हैं, उस परिमाण में पाश्चात्य दर्शन के क्रम में भारतीय दार्शनिक मतामत, अंग-उपांग नहीं । इसी बिंदु पर यायावर की और क्रमश: साहित्यकार की भी साहित्यिक और दार्शनिक जिज्ञासा की पृथकता सम्मुख आती है । समाज को स्पंदित करने वाले अनेकानेक संघातों से लेखकीय संबन्धन सूत्र एक अनिवार्य शर्त है जबकि एक दार्शनिक समाज निरपेक्ष की स्थिति तक पहुंच सकता है । वेदान्तिक अनुभव के नवोन्मेष के दार्शनिक यशदेव शल्य की एक स्थापना `दर्शन का परमश्रेय, परमप्रमेय तो अंत में मनुष्य ही है । मनुष्य के स्वरूप की अनवगाढ्यता और अनाकलनीयता ही तो दार्शनिक सिद्धांतों की अनेकता के मूल में है ` को व्याख्यायित कर रमेशचन्द्र शाह ने मानवकेन्द्रित आध्यात्मिकता की सत्ता को स्वीकार किया है ।

पूर्वी और पश्चिमी साधनापद्धतियों के चिंतन-विश्लेषण के मूल में लेखक की `वह वेलाग, सचेत, स्वाधीन जिज्ञासा` है जो परिवृत्ति में घिरी हुई होकर भी आगे देखने पर बल देती है और जहां स्वभावत: दार्शनिक उन्मेष की सृष्टि हो जाती है । अपने समकालीनों द्वारा (और निस्संदेह बाद के आलोचकों द्वारा

----

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ0 65
2. डा0 राम कमल राय - शिखर से सागर तक, पृ0 128

भी) स्वयं को अस्तित्ववादी घोषित किये जाने पर अज्ञेय की क्षुब्ध मन:स्थिति से यह नि:सृत हुआ है कि `हिंदी के जो परिश्रम-विरोधी सहजवादी आलोचक मुझको ही अस्तित्ववादी और सार्त्र का अनुपायी कह देते हैं, उनके सम्मुख तो यह नियोजन करना भी निष्प्रयोजन है कि सार्त्र का साहित्यिक अस्तित्ववाद मेरे लिए विशेष आकर्षक नहीं रहा, यद्यपि मैंने पढ़ना और समझना उसे भी चाहा जैसे कि अन्य साहित्यिक सिद्धांतों को समझना चाहता रहा हूं ।`[1] इस सिद्धांत विशेष को जानने-समझने की लेखकीय जिज्ञासा से ही अज्ञेय पूर्वग्रहग्रस्त समीक्षकों की मान्यतानुसार अस्तित्ववादी नहीं हो जाते । अज्ञेय-कृत `अपने-अपने अजनबी` के सर्वांग को अस्तित्ववादी आख्यान कहना भी अतिरिक्त समीक्षकीय व्यायाम का दुष्परिणाम है । `आंगन के पार द्वार` और `अपने-अपने अजनबी` में उन की इस चिंतनधारा को अभिव्यक्ति मिली है जहां मृत्यु की परिकल्पना जीवन को रस और सार्थकता देने के रूप में की गयी है, और इस तरह जो अस्तित्ववाद के प्रतिरोध में है ।... अस्तित्ववाद, जहां मृत्यु के कारण जीवन को अर्थहीन मानता है वहां अज्ञेय नश्वरता को मानवीय सर्जनात्मकता के लिए एक प्रेरक शक्ति मानते हैं ।`[2] फिर भी लेखक की कतिपय कृतियों में और विशेषकर यात्रावृत्तान्तों में अनेक स्थलों पर अस्तित्ववादी चर्चा से अस्तित्ववाद के प्रति यायावर की विशेष रुचि रेखांकित होती है । यास्पर्स से भेंट वाले वृत्त में उपलब्ध अस्तित्ववाद पर गहरे विचार-विमर्श के अतिरिक्त `लोकोत्तर`, `तो यह पेरिस है` और `रोमा` में भी अस्तित्ववादी प्रसंग वर्तमान हैं । भारतीय दर्शन की दुर्निवार आकांक्षा और पाश्चात्य जगत के अहं की तुष्टि और उसके समानांतर वहां के यांत्रिक दुष्परिणाम पर लेखक की सटीक दार्शनिक टिप्पणी पाश्चात्य जीवन-प्रणाली को भारतीय

----

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 37
2. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 116

दृष्टि की सापेक्षता में परखती है । `भारतीय दर्शन कहता है कि आकांक्षा का अंत नहीं ; पर पश्चिम को अहं की तृप्ति का गहरा संतोष मिलता रहा है । पर बहुत से यूरोपीय पहचानने लगे हैं कि आकांक्षा की प्रेरणा से भी बलवती निरे यंत्र की अनिवार्यता होती जा रही है ।... अहं की पुष्टि के लिए बनायी गयी मशीन ऐसी हावी हो गयी है कि वह व्यक्ति को ही कुचले दे रही है ; वह अपने को अधिकाधिक नगण्य पाता हुआ दौड़ रहा है... और ... क्रमशः और नगण्य होता जा रहा है ।`[1] अहं की तुष्टि पर आधारित पाश्चात्य यांत्रिक अनिवार्यता व्यक्ति को नगण्य ही नहीं बनाती, उसे नग्न भी करती जाती है । `लंदन और पेरिस की दुकानों अथवा विज्ञापनों में स्त्रियों के अन्डरवियर के अतिरिक्त प्रदर्शन ` के समानांतर ही `दिल्ली और कलकत्ता के केन्द्रीय बाजारों में ... उभारकर टांगी हुई चोलियां और जमीन पर बिखरी हुई उतनी ही भद्दी रंग-बिरंगी पत्रिकाएं ।... मशीन सब कुछ उघाड़ती चलती है, मशीन के आत्मा नहीं है । लेकिन मशीन का दास बनकर मनुष्य भी निरंतर अपने को उघाड़ता जा रहा है ।`[2] घोर मशीनीकरण के कुप्रभावों के प्रति अज्ञेय के इस समीचीन निष्कर्ष के स्रोतों की त्वरा में तो आज और भी बढ़ोत्तरी हुई है ।

अज्ञेय के दार्शनिक चिंतना की सबसे बेजोड़ अभिव्यक्ति यूरोप-प्रवास की डायरी `प्राची-प्रतीची` है जिसमें व्यक्ति, स्वतंत्रता, वरण, काल आदि विषयों पर सूत्र रूप में पौर्वात्य, और पाश्चात्य दृष्टि उद्घाटित हुई है । `एक बूंद सहसा उछली` के अंत में विन्यस्त `प्राची-प्रतीची` में यायावर ने आस्तिकता, आनंद और समरसता जैसे कतिपय बिंदुओं को पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों की सापेक्षता में विश्लेषित कर समूचे यात्रानुभव को एक बौद्धिक परिपेक्ष्य प्रदान

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 9
2. वही, पृ० 8

किया है । `पश्चिम की प्रतिमा कथन में है, पूर्व की संकेत में ; पश्चिम की व्याख्या में, पूर्व की सूत्र में` और यूरोपीय व्यक्ति ज्ञाण में जीता है... । भारतीय व्यक्ति अनंतकाल में रहता है`... जैसे सूत्र-वाक्य `प्राची-प्रतीची` की दार्शनिक जीवंतता के प्रमाण हैं । अज्ञेय के यहां पश्चिम और पूर्व की प्रतिमा में मौलिक अन्तर इस प्रकार है । `पश्चिम की प्रतिमा कल्पना में है । अमुक क्योंकि अमुक है, इसलिए उससे इतर नहीं हो सकता ।... पूर्व की प्रतिमा विस्तार में है । अमुक क्योंकि अमुक है, इसलिए अमुक से इतर और सब कुछ भी हो सकता है ।`[1]

`अरे यायावर रहेगा याद ?` के पहले ही वृत्त `एक टायर की राम कहानी` में टायर की गोलाकृति को चक्र की दार्शनिकता प्रदान कर दी गयी है । स्वयं यायावर के यहां `सृष्टि की सर्वोत्तम आकृति चक्र है ।`[2] `प्राची-प्रतीची` की भांति ही दार्शनिक सूत्रबद्धता `अरे यायावर रहेगा याद ?` में भी, यद्यपि अपेक्षाकृत कम, पर उपलब्ध है । जैसे - `कर्म बहुत से आघात सहने का एक मात्र उपाय होता है - फिर कर्म वह कितना ही असंगत क्यों न हो... ।`[3] खोये हुए विद्युत-दर्शक की खोज में प्रवृत्त गुरू द्वारा समूचे फणिल को उलीच देने की तन्मयता जिस विश्वास और आस्था को सम्मुख लाती है, उसका संबन्धन सूत्र सबसे अधिक दर्शन से ही जुड़ता है । अत: चाहे `अरे यायावर रहेगा याद ?` हो या `एक बूंद सहसा उछली`, प्रत्येक बिंदु पर यायावर के प्रौढ़ दार्शनिक रूप का साक्षात्कार होता है ।

0

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 206
2. अरे यायावर रहेगा याद ? पृ० 1
3. वही, पृ० 100

पंचम अध्याय

अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का कलात्मक पक्ष

(1) विवरण का अभाव

(2) आत्माभिव्यंजना का आग्रह

(3) काव्यात्मकता

(4) भाषा की नवीनता

अज्ञेय के यात्रा-साहित्य का कलात्मक पक्ष

(1) विवरण का अभाव

यात्रा-साहित्य सूचनिका या विवरणात्मक दस्तावेज़ नहीं । यह सर्जक यायावर की देश, दृश्य या स्थान आदि के अनुकूल आलम्बन से निःसृत अंतरंग रागात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें उसके व्यक्तित्व और दृष्टि के अनुसार ही इतिहास, संस्कृति, प्रकृति आदि चीज़ें संयोजित होती हैं । यात्रा-साहित्य में विवरणात्मकता की स्थिति असंदिग्धरूपेण वर्तमान रहती है, पर विवरणात्मकता मात्र से ही यात्रा-साहित्य की निष्पत्ति संभव नहीं । अभिप्राय यह कि यात्रा-साहित्य आत्यांतिक रूप से विवरणात्मक नहीं होता । यद्यपि इसकी भूमिका नगण्य भी नहीं होती । यह यात्रा-वृत्त की प्राण विशेषता नहीं । यही कारण है कि यात्रा-वृत्त की यात्रा के दौरान स्थूल विवरण की पाठकीय जिज्ञासा अंततः निराशा में पर्यवसित हो जाती है ।

रोमा, फ़्लोरेंज़, पेरिस, बर्लिन आदि वृत्तों में अज्ञेय की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शीलता, गहरी संवेदना और आत्मीयता का अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय स्तर लंदन-वृत्त में दिखायी देता है । `जर्मनों ने स्वयं हमारी उपेक्षा से हमारे साहित्य का उद्धार किया` जैसी मान्यता प्रतिपादित करने वाले यायावर ने जर्मनी-चित्रण में मैक्समूलर, मैक्डानल, कीथ, टाड और भारतवासी बुल्के आदि अपने साहित्यिक उद्धारकों को विस्मित कर दिया है । यह अभाव डा० ओम प्रकाश अवस्थी के `अज्ञेय गद्य में`, `जर्मनीवासियों के प्रति उपेक्षा` के रूप में संप्रेषित है । `एक बूंद सहसा उछली` का लेखन इंग्लैण्ड स्कूल का चश्मा लगाकर लिखा गया है ।`[1]

---

1. डा० ओमप्रकाश अवस्थी - अज्ञेय गद्य में, पृ० 115

डा० अवस्थी का यह निष्कर्ष कि `अज्ञेय जिस ब्रितानी सेना के अफसर थे, जर्मनी उस ब्रिटिश सत्ता का शत्रु था` तथा `हिटलर की तानाशाही नीति से लेखक की लोकतंत्रात्मक विचारधारा का ... विरोध था ; और इसीलिए `डा० लोहिया की भारतीय दासता के नियामकों के प्रति ग्रंथि के समानांतर ही यायावर में भी जर्मनों के प्रति एक ग्रंथि थी` समीचीन प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अज्ञेय के यहां `सहज घरेलूपन` का भाव उत्पन्न करने वाला `हिंदुस्तानी लंदन` हजारों भारतीय आप्रवासियों, विद्यार्थियों, संस्कृति के अध्येताओं और खोजियों का लंदन है । जर्मनी यहां अंगरेज़ों के तुलनात्मक सादृश्य के साथ चित्रित है । `जैसे जर्मनों ने स्वयं हमारी उपेक्षा से हमारे साहित्य का उद्धार किया ; वैसे ही अनेक दृष्टि संपन्न अंगरेज़ों ने हमारी कला-वस्तुओं और पुरातत्व सामग्री को हमारी अज्ञ उदासीनता से बचाकर रखा और नये सिरे से उनका सम्मान करना सिखाया ।`[1]

तुलनात्मक संदर्भ में निदर्शित किसी मान्यता के एकांगी पक्ष के माध्यम से अज्ञेय की जर्मनों के प्रति दुराग्रही दृष्टि रेखांकित करना स्वयं आलोचकीय दुराग्रह का ही परिणाम है । भ्रमण के दौरान यायावरी के अनेकानेक संघातों से उद्वेलित यात्रा-साहित्य की संवेदना को तराशने वाले यायावर से स्व-अभिरुचि के अनुकूल विवरणों की अपेक्षा ठीक वैसी ही है, जैसे किसी चित्रकार से केवल अभिसार में जाती हुई नायिकाओं का ही चित्र खींचने या किसी स्वर-साधक से केवल राग-मल्हार ही अलापने की अपेक्षा । `वह सर्वसाधारण की दृष्टि से प्रत्येक बात का विवरण देकर नहीं चलता और यदि विवरण तथा विस्तार देना ही होता है तो वह उन्हें अपने भावावेश में प्रस्तुत करता है तथा आत्मीयता के वातावरण में उपस्थित करता है ।`[2]

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 77
2. धीरेन्द्र वर्मा (संपादित) - साहित्यकोश, डा० रघुवंश - यात्रा-साहित्य, पृ० 512

`एक बूंद सहसा उछली` में अन्यत्र खण्डहर, स्थापत्य, शिलालेख, स्मारक आदि ऐतिहासिक साक्ष्यों और झील, नदी, समुद्र जैसे प्राकृतिक उपादानों के साथ ही कतिपय यूरोपीय नगरों की परस्पर सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन-प्रणाली पर केन्द्रित तुलनात्मक और आलोचनात्मक विचार, दार्शनिक विश्लेषण आदि भी प्रतिपादित है, जिसमें एक ओर पुरानी बस्तियों, गलियों और माझा की विभिन्नवर्णी मंजूषाएं हैं, तो दूसरी ओर संस्कृति-लोकसंस्कृति, लोककथा, अन्धविश्वास और साहित्य की वाचिक तथा लिखित परंपरा के प्रति गहरा सरोकार भी है । `एलोरा की गुफाएं हों या फ़िरेंज़े का स्थापत्य, अस्तित्व-वादी विचारधारा हो या लोहे की छूत से संबन्धित अंध-विश्वास, लेखक की परिधि में जो कुछ भी आता है, आलोकित हो उठता है ।`[1] `अरे यायावर रहेगा याद ?` के वृत्तों में विभिन्न विवरणों की सचेत अनुस्यूति स्पष्ट है । फलस्वरूप इस वृत्तांत की संवेदना में इतिवृत्तात्मकता और वर्णनात्मकता रेखांकित होती है । `एक बूंद सहसा उछली` के विवरण इसे विवरणात्मक अथवा स्थूल नहीं, उत्तरोत्तर सहज-संवेद्य बनाते चलते हैं । अतिरिक्त विवरणात्मकता से यात्रा-साहित्य, स्थूल और कोरे वर्णनात्मक भी बनते हैं, `अरे यायावर रहेगा याद ?` इसका प्रमाण है । `जन जनक जानकी` में संकलित अज्ञेय-कृत `वनाश्रम नगर` और `स्मर एवं पूर्वकं भावम्` क्रमशः दोनों वृत्तों में पहले में अपेक्षाकृत अधिक विवरण विद्यमान है तो दूसरे की विवरणात्मकता रामायण की अर्थवत्ता, काल चिंतन, क्षण की अवधारणा आदि की सापेक्षता में संप्रेषित है ।

(2) आत्माभिव्यंजना का आग्रह

व्यक्तिवादिता आत्माभिव्यंजना का प्रस्थान बिंदु है । पाश्चात्य अभि-व्यंजनावादी आलोचक क्रोचे के यहां तो वैयक्तिक दृष्टि अर्थात् आत्मा के आलोक

---

1. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 102

में ही वास्तविक सत्य से साक्षात्कार निदर्शित है । कृति में रचनाकार के व्यक्तित्व का स्पंदन वर्तमान रहता है पर रचना में उसकी वैयक्तिकता सर्व-साधारण की संवेदना में इस प्रकार संगुंफित होती है कि भोक्ता को रचना के स्रष्टा की वैयक्तिकता खटकती नहीं । तात्पर्य यह कि रचना में कृतिकार आत्यांतिक रूप से उपस्थित नहीं रहता । यात्रा को अनुभूत सत्य और मानसिक प्रतिक्रियाओं के रूप में ग्रहण करने वाला यायावर यात्रा-वृत्त में अदृश्य भाव से वर्तमान रहता है । संवेदनशील होकर भी रचना में निरपेक्षता की स्थिति यायावर की अनिवार्य शर्त है । `अपने को केन्द्र में रखकर भी प्रमुख न होने देना साहित्यिक यायावर का कर्त्तव्य है, क्योंकि यदि लेखक का व्यक्तित्व उभरेगा तो वह यात्रा-साहित्य न रहकर आत्मचरित ही रह जायेगा, यात्रा-संस्मरण न रहकर आत्म-संस्मरण हो जायेगा ।`[1]

आत्माभिव्यंजना से समर्थित कतिपय प्रसंग अज्ञेय के यात्रा-साहित्य में द्रष्टव्य है । स्वयं की कथित ढंग से आरोपित रचनाधर्मी वैचारिक दृष्टि का खण्डन हो या आंतरिक द्वन्द्वों का चित्रण सर्वत्र आत्माभिव्यंजनावादी स्वर रेखांकित होता है । `हिंदी के जो परिश्रम-विरोधी सहजवादी आलोचक मुझको ही अस्तित्व-वादी और सार्त्र का अनुयायी कह देते हैं, उनके सम्मुख तो यह निवेदन करना भी निष्प्रयोजन है कि सार्त्र का साहित्यिक अस्तित्ववाद मेरे लिए विशेष आकर्षक कभी नहीं रहा, यद्यपि मैंने पढ़ना और समझना उसे भी चाहा है जैसे कि अन्य साहित्यिक सिद्धांतों को समझना चाहता रहा हूं ।`[2] एक स्थान पर यायावर का प्रथम पुरुष `मैं ` की शैली में निबद्ध द्वन्द्वपूर्ण मनःस्थिति की अभिव्यक्ति स्पष्ट है । `अपने को आस्तिक कहते मुझे संकोच होता है, यद्यपि मैं जानता हूं कि मैं नास्तिक भी नहीं हूं । किसी भविष्यत् जीवन में मेरा विश्वास नहीं है ; लेकिन उससे इस जीवन के बाद जो `न कुछ की स्थिति` प्राप्त होती है, उसका

---

1. धीरेन्द्र वर्मा, संपादित साहित्यकोश, डा० रघुवंश - यात्रासाहित्य, पृ० 512
2. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 37

मुझे डर भी नहीं है । आशा मुझमें नहीं है, लेकिन आतंक भी मुझमें नहीं है ।`[1] अनुकूल संदर्भों में गूँथे होने के कारण ऐसे संदर्भ पाठकीय संवेदना को दारित नहीं करते ।

इनके यात्रा-साहित्य में कथ्य की संवेदना, शैल्पिक बुनावट और इस प्रकार समूची कृति की संघटनात्मकता से एक सजग लेखक की छवि उभरती है । पर अतिरिक्त सजगता लेखकीय क्षमता पर तुषारापात भी करती है । यह अतिरिक्त सजगता किसी मार्मिक बिंदु के गणितीय जोड़-तोड़ और अलिखित पर वांछनीय अंश को अनावश्यक रूप से अनावश्यक सिद्ध करने की अटपटी लेखकीय स्थिति में सम्मुख आती है । अज्ञेय के दोनों यात्रावृत्तों में यही अतिरिक्त सजगता कतिपय मर्मस्पर्शी स्थलों को आंशिक रूप से कमजोर भी बनाती है ।

(3) काव्यात्मकता

हिंदी की प्रयोगशील काव्यधारा के प्रवर्तक और सर्वाधिक शक्तिशाली प्रतिनिधि कवि अज्ञेय के क्रमशः दोनों यात्रावृत्तों, `अरे यायावर रहेगा याद ?` और `एक बूंद सहसा उछली` के शीर्षक का आधार उनकी काव्य-जगत की ही पंक्तियां हैं । उत्तरकालीन अज्ञेय के काव्य में पूर्वार्द्ध के कवि अज्ञेय की अपेक्षा घनीभूत रचनात्मक उर्जा उनकी विकसनशील काव्ययात्रा का ही परिणाम है । `अरे यायावर रहेगा याद` और `एक बूंद सहसा उछली` दोनों में क्रमशः एक की स्वदेशी और दूसरे की विदेशी पृष्ठभूमि प्रकारांतर से अज्ञेय की प्रयोगशील दृष्टि `में ` और `मेतर` के निहितार्थ को व्यंजित करती है । कवि या उपन्यासकार के आलोचकीय द्वन्द्व में अज्ञेय डा० नगेन्द्र प्रभृति समीक्षकों के यहां प्रधानतः

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 47

उपन्यासकार हैं । `पहले मैं अपने को मूलत: कवि मानता था, फिर लगने लगा कि मैं मूलत: उपन्यासकार हूं, अब फिर मुझे लगता है नहीं, मैं कवि ही हूं ।`[1] स्वयं अज्ञेय के इस कथन के आलोक में मूलत: उनको कवि या उपन्यासकार सिद्ध करने की आलोचकीय होड़ तिरोहित हो जाती है ।

अज्ञेय को तात्कालिक शब्दबद्धता अभीष्ट नहीं । अपने मूल संस्मरणात्मकता में इनके यात्रावृत्तांत चेतना में छनकर और निरंतर भाव-उर्जा से समंजित होकर ही सहज-संवेद्य स्थिति को छू पाते हैं । `मैं किसी भी अनुभव के बाद तुरंत लिखने नहीं बैठ जाता । ... जब तक मुझे लगता है कि कहीं अस्पष्ट हूं, कुछ अधूरा है, तब तक लिखना शुरू नहीं करता ।`[2] इस अस्पष्टता और अधूरेपन की सर्जनात्मक निष्पत्ति की प्रक्रिया में `बरस पर बरस` ही क्यों न आहूत हो जायं ।

> `भले ही फिर व्यथा के तम में
> बरस पर बरस बीतें
> एक मुक्ता रूप को पकते ।`[3]

इस `व्यथा के तम` की करुण गहराई की परिव्याप्ति में अज्ञेय का समूचा रचनासंसार अभिव्यंजित है । उपन्यासकार अज्ञेय के बाबा मदन, शशि, रेखा, गौरा आदि वेदना की आंच में पके हुए चरित्रों के समानांतर ही यायावर अज्ञेय के `बर्लिन` वृत्त के कार्ल, मायर दम्पति, अल्वारेस आदि चरित्र ठहरते हैं ।`दु:ख सबको मांजता है` की काव्यात्मक संवेदना का `- मुझको दीख गया : । हर

---

1. विष्णुकान्त शास्त्री, `आलोक हुआ अपनापन`, पूर्वग्रह - अंक 92-93 पृ0 64
2. वही, पृ0 65
3. एक बूंद सहसा उछली, पृ0 198

आलोक हुआ अपनापन । है उन्मोचन । नश्वरता के दाग से ' में `नश्वरता के दाग से उन्मोचित `ममेतर` अर्थात् नश्वरता के भावबोध से आक्रांत पश्चिम से गहरा जुड़ाव स्पष्ट है । `अमरावती`, `पुष्पावती` आदि शीर्षकों का निहितार्थ `एक बूंद सहसा उछली` को काव्यात्मक परिपेक्ष्य प्रदान करने के साथ ही यायावर के घोर काव्यात्मक आग्रह को भी सम्मुख लाता है । चिंतन की प्रक्रिया में भी काव्यात्मकता लेखक का साथ नहीं छोड़ती । `अरे यायावर रहेगा याद ?` के `माधुली` में काल-चिंतन-संबन्धी एक काव्यांश यहां उल्लेखनीय है -

`काल का प्रवाह एक सूत्र है, पाश है,
जो बांधता है, बेबसी में !
ज्ञान एक लीक है जो बहिष्कृत करती है !
मेरी आंखें अनभिज्ञता के झरोखे से
स्पष्ट देख पाती हैं -
युगातीत शांति इस चक्रावर्त जीवन-विवर्तन पर ।`[1]

जिस तरह `नदी के द्वीप` में देशी-विदेशी कवियों की कविताओं का प्रसंगवशात् उल्लेख है, उसी तरह `एक बूंद सहसा उछली` में भी देशी-विदेशी कवियों के कुछेक काव्यांश उपलब्ध हैं । जैसे -- शम्भूनाथ सिंह द्वारा रचित -

`समय की शिला पर मधुर चित्र कितने ।
किसी ने बनाये किसी ने मिटाये ।`[2]

राबर्ट वर्न्स द्वारा रचित -

---

1. अरे यायावर रहेगा याद ? पृ० 160
2. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 63

`ओ माइ लव`ज़ लाइक ए रेड-रेड रोज़
दैट`स न्यूली स्प्रंग इन जून :
ओ माइ लव`ज़ लाइक द मेलोडी
दैट`स स्वीटली प्लेड इन ट्यून ।`[1]

`अरे यायावर रहेगा याद ?` के `परशुराम से तूरख़म` वृत्त में यायावर ने हीर और रांझा तथा सोहनी और महीवाल पर आधारित लोकगाथात्मक गीतों को भी उद्धृत किया है । इसी वृत्त में काव्य की वाचिक परंपरा के प्रति लेखक का मोह भी दिखायी देता है । अज्ञेय का गद्य भी अनुभूतियों और संवेदनाओं की घनीभूत अभिव्यक्ति से काव्यात्मक बन पड़ा है । इस संदर्भ में स्वयं अज्ञेय का `... मैं कवि ही हूं । उपन्यास, कहानी, नाटक भी मैं कवि के रूप में ही लिखता हूं ` कथन अत्यन्त ही सार्थक है ।

(4) भाषा की नवीनता

यात्रा-साहित्य में भाषिक सर्जनात्मकता अन्य विधाओं में प्रयुक्त पारंपरिक काल्पनिक वायवीयता की स्थानापन्न है । सामान्यतया अभिव्यक्ति की आधार-भित्ति भाषा अज्ञेय के यहां `मनुष्य के मनुष्य होने की पहचान और शर्त है`, जिस की `तीन शक्तियां हैं : अपनी अस्मिता की पहचान, मूल्यबोध की संभावना और यथार्थ की पहचान ।`[2] अज्ञेय की भाषा न तो कबीर की `पंचमेल खिचड़ी` और `सधुक्कड़ी` है और न ही तथाकथित `मिट्टी से जुड़े `रचनाकारों की तद्भवबहुला अनगढ़ प्रयोग की पर्याय । रूढ़ियों से मुक्त इनकी भाषा सर्वत्र नवीन भाव-बोध

---

1. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 85
2. अज्ञेय - स्रोत और सेतु, पृ० 83

से परिष्कृत है । भाषा के आर्ष प्रयोग के कायल अज्ञेय के यहां प्रयोगशील भावबोध के अनुकूल ही शाब्दिक मितव्ययिता और उसकी समृद्ध अर्थच्छवि का सामंजस्य उपलब्ध है । भाषिक-सवेष्टता अज्ञेय-साहित्य की मूलाधार है । यही कारण है कि अज्ञेय ने `मानवीय सर्जनात्मकता के साथ भाषा को अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ माना है ।`[1]

अनगढ़पन और असंयम आदि से परे अज्ञेय का यात्रा-साहित्य संस्कृत-निष्ठता, काव्यात्मकता आदि गुणों से समर्थित भाषिक गांभीर्य से ओत-प्रोत है, जिसमें बोझिल पंडिताऊपन से मुक्ति और प्रांजल भाषिक अन्विति वर्तमान है । एक ओर लेखक जहां बहुभाषी स्विट्जरलैण्ड में राजकीय स्तर पर प्रतिष्ठित वहां की त्रिभाषिकता को भाषा-मैत्री का विरल उदाहरण मानता है, वहीं दूसरी ओर इसी त्रिभाषिकता को वहां के साहित्यिक क्षितिज से किसी भी महान नामधारी साहित्यकार की अनुपस्थिति का कारण भी । `बिना एक भाषा में पूरी तरह डूबे रचनात्मक साहित्यिक कार्य नहीं हो सकता । स्विट्जरलैण्ड में बड़े साहित्यकार नहीं हुए हैं : जो हुए हैं, वे उसकी त्रिभाषिकता के उदाहरण नहीं हैं, बल्कि एक भाषा के और भाषिक संस्कृति के वातावरण में पले हैं - जर्मन के या फ्रेंच के ।`[2] दार्शनिक ज्ञान से सत्य का साक्षात् होता है तथा सृजनात्मक भाषिक सामर्थ्य से सौंदर्य का । `ज्ञान के द्वारा हम सत्य की वास्तविकता को पहचानते हैं तो भाषा के द्वारा उसकी सुन्दरता को ।`[3]

`प्राची-प्रतीची` या अन्य दार्शनिक चिंतन संबन्धी वृत्तों में अधीत अज्ञेय का

---

1. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 103
2. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 36
3. वही, पृ० 36

संयमित भाषिक गांभीर्य दार्शनिक गूढ़ता के अनुकूल ही है । पर उन के यात्रा-वृत्तों की संघटना में रेखांकित होने वाली धारावाहिक रोचकता के मूल में

मूल में भाषिक गांभीर्य के साथ ही प्रसंगानुकूल संयोजित व्यंग्यों, विडम्बनाओं और लोकोक्तियों आदि की महत्ता भी असंदिग्ध है । `सब रंग और कुछ राग` में संकलित यात्रावृत्तात्मक वृत्त `मार्गदर्शन ` में `कुट्टिचातन` शिष्ट व्यंग्य के साथ गुदगुदाता भी है और चिकोटी भी काटता है । अत: लेखक के यहां गंभीरता के साथ यथेष्ट रोचकता भी है । व्यंग्यात्मक वपलता और व्यंग्य तथा विडम्बनाओं के परस्पर तनाव आदि से अज्ञेय की भाषिक बुनावट प्रीतिकर बन पड़ी है ।

प्रकृति, लोकगाथाओं, परियों की कहानियों आदि के चित्रण संबन्धी भाषिक संरचना में काव्यात्मक संवेदना लक्षित होती है । `एक दूसरा फ्रांस` वृत्त में सूर्योदय की रोमिल किरणों से आच्छादित लिथोनस का चित्रण जहां सशक्त प्राकृतिक मनोरमा का बेजोड़ प्रमाण है वहीं गद्य में लक्षित होने वाली काव्यात्मकता का प्रतिमान भी । `फ़िरेंज़े ` में एक सिपाही द्वारा एक शब्द के गलत उच्चारण को सही किये जाने पर यायावर अभिभूत है और इसे उसने अपनी भाषा के प्रति निष्ठा और उत्तरदायित्व के भाव` के साथ `नागरिक-संस्कारिता का सही प्रतिचित्र` भी बताया है । मर्म के अनुकूल भाषिक वयन की क्षमता लेखक की भाषिक प्रौढ़ता का प्रमाण है । रामायण की भावभूमि पर संचरित `जन जनक जानकी` की सांस्कृतिक यात्रा को अज्ञेय ने मिथक की शब्दावली में लिपिबद्ध किया है ।

o

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

गद्यात्मकता की अप्रतिम प्रतिष्ठा के कारण बहुधा `गद्यकाल` संज्ञा से अभिहित आधुनिक हिंदी साहित्य में यात्रावृत्तांत, डायरी, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र आदि कतिपय गद्यरूपों की विशिष्टता असंदिग्ध है । मूलत: जीवन और जगत की वास्तविक घटनाओं पर आधारित ये गद्यरूप पूर्ववर्ती साहित्य में प्रयुक्त पारंपरिक काल्पनिक वायवीयता को भेद कर भाषिक सर्जनात्मकता को रेखांकित करते हैं । `ये गद्य-वृत्त आधुनिक काल में अधिकाधिक पहचानी भाषिक सर्जनात्मकता के महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं ।`[1] पुनरुत्थानवादी आलोचकों के यहां ऐतरेय ब्राह्मण में अंकित `चरैवेति` मंत्र जैसे कुछेक साक्ष्य भले ही वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध घुमक्कड़ी के प्रस्थान बिंदु हों, पर आधुनिक हिंदी साहित्य में यह साहित्यिक रूप भी कई अन्य रूपों के साथ पाश्चात्य साहित्य के संपर्क में आने के बाद ही विकसित हुआ है ।`[2]

यात्रावृत्त-लेखन में विवरणात्मक, संस्मरणात्मक, विचारात्मक और आत्मपरक आदि शैलीगत भिन्नता भी रेखांकित होती है । आरंभिक यात्रावृत्त परिचयात्मक और स्थूल वर्णन प्रधान होने के कारण अपेक्षाकृत अधिक इतिवृत्तात्मक होते थे । इस विधा की संख्या और वैविध्य दोनों ही दृष्टियों से

---

1. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 97
2. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - साहित्यकोश, डा० रघुवंश, यात्रा-साहित्य, पृ० 612

सबसे अधिक समृद्ध बनाने वाले अप्रतिम घुमक्कड़ राहुल सांकृत्यायन के यहां भी इतिवृत्तात्मकता द्रष्टव्य है । पर कालक्रम में यात्रावृत्त की आकृतियों और अंतरंग सामग्री तथा सर्जनात्मक भाषा और सूक्ष्मतर संवेदन के बीच अपेक्षित समुचित अनुपात की सृष्टि प्रारंभ हुई । इस बिंदु पर यथातथ्य वर्णन की स्थूल इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति नेपथ्य में चली गयी तथा लेखक की प्रतिक्रियाओं एवं संवेगों से समन्वित अभिव्यक्ति प्रमुख हो गयी ।

सर्जनात्मक चमक से ओत:प्रोत `अरे यायावर रहेगा याद ?` के अधिकांश में इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । पर एक संवेदनशील और अधीत मन की चिंतन और प्रतिक्रियाओं से आद्यन्त स्पंदित एक संघटित कलाकृति के रूप में `एक बूंद सहसा उछली` को यात्रावृत्त संबन्धी संपूर्ण उपलब्धिजगत का बेजोड़ प्रतिमान कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं। भ्रमण की तात्कालिक अभिव्यक्ति से परे इनके यात्रावृत्तों का रूप-विधान चेतना में लम्बे समय तक थिरा कर ही मूर्त होता है । इसीलिए संस्मरणात्मकता एक अदृश्य भाव के साथ दोनों में विद्यमान है ।

काव्य, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, यात्रावृत्त आदि विभिन्न विधाओं में एक साथ समान मूर्धन्यता प्राप्त करने वाले अज्ञेय के साहित्य में उनके यात्रावृत्तांतों का स्थान निर्धारित करना निश्चितरूपेण एक जटिल प्रश्न है । अज्ञेय ने स्वयं को मूलत: कवि कहा है और डा० नगेन्द्र प्रभृति आलोचक उन्हें मूलत: उपन्यासकार मानते हैं, पर यह निर्विवादरूपेण उल्लेखनीय है कि अज्ञेय की काव्यात्मक संवेदना का ही औपन्यासिक विस्तार उनके उपन्यास हैं। `नदी के द्वीप` इसका प्रमाण है । इनके यात्रावृत्तांतों में स्वरचित कविता हो या

अन्य कवियों की कविताओं की प्रसंगानुकूल अनुस्यूति, सर्वत्र अज्ञेय की काव्य-मेधा से साक्षात्कार होता है । काव्यात्मकता संपूर्ण अज्ञेय-साहित्य में एक सर्वसामान्य गुण है । `इनके यात्रा-संस्मरणों में व्यक्त स्फुट विचार लेखक की कवि-व्यक्तित्व संबन्धी मौलिक मान्यताओं की ही पुष्टि करते हैं ।`[1]

यात्रा संबन्धी दृश्य, घटनाओं और अनेकानेक संघातों के यायावर के स्मृतिग्रंथ में निरंतर अंकित होते रहने से शैलीगत संस्मरणात्मकता के अतिरिक्त एक अन्तर्मुखी यात्रा की सम्मुख आती है । यह अन्तर्मुखी यात्रा कुंठा, संत्रास या अन्तर्गुहावास आदि के अर्थ में संप्रेषित कदापि नहीं, बल्कि स्मृतियों में संगृहीत भ्रमण के तमाम उपादान `कच्चामाल` स्मृति-जगत की आंतरिक यात्रा से ही सृजनात्मकता का स्पर्श कर पाते हैं । `इसीलिए लेखक यात्रा-संस्मरण की वस्तु को कच्चा माल मानता है ।`[2] स्वयं लेखक के ही शब्दों में `जो कच्चा माल मुझे मिला, उससे कुछ निर्माण करने में मुझे वर्षों भी लग सकते हैं, लेकिन यह तो मेरी आभ्यांतर यात्रा की बात है ।`[3]

ईश्वर हैं या नहीं ? कौन से सत्व या तत्व शाश्वत और ध्रुव हैं ? संसार में बढ़ते तनाव की क्या संभावनायें हैं ? - आदि प्रश्नों से यायावर का दार्शनिक सरोकार सम्मुख आता है । बिना किसी पूर्वग्रह के लेखक ने दर्शन को

---

1. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० 103
2. वही, पृ० 98
3. एक बूंद सहसा उछली, पृ० 198

साहित्यकर्म से उन्नत बताया है और स्वयं की दार्शनिक जिज्ञासाओं को लेखकीय जिज्ञासा मात्र । `एक बूंद सहसा उछली` की समूची संघटना को दार्शनिक और बौद्धिक परिपेक्ष्य प्रदान करने वाले वृत्त `प्राची-प्रतीची` में निहित चिंतन-विश्लेषण की पद्धति यायावर की विशुद्ध लेखकीय जिज्ञासा का अतिक्रमण कर दार्शनिक चिंतन को ही प्रमाणित करती है । इस वृत्त के दार्शनिक चिंतन की पृष्ठभूमि में पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों की तुलनात्मक रूपरेखा स्पष्ट है । यह वृत्त मूलत: समरसता, आनंद और आस्तिकता तथा पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों की तुलना को सम्मुख लाता है ।

दार्शनिक चेतना के साथ ही सांस्कृतिक निष्ठा का संगुंफन अज्ञेय के यात्रा-वृत्तों का केन्द्रीय पक्ष है । `एक बूंद सहसा उछली` का तो उद्देश्य भारत और यूरोप के सांस्कृतिक दाय में निहित समान-असमान तत्वों का उद्घाटन रहा है । विभिन्न देशों की सामाजिक उन्नति, जातीय-भिन्नता, साहित्यिक उत्कर्ष - अपकर्ष आदि को लेखक ने परस्पर तुलनात्मक सांस्कृतिक सापेक्षता में उद्घाटित किया है । भारतवासियों की अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति स्वार्थपरक निवृत्तिमूलक दृष्टि पर यायावर क्षुब्ध है और नि:स्वार्थ सार्वजनिकता से अनुप्राणित सांस्कृतिक तत्वों की रक्षा हेतु यूरोपवासियों के उन्नत नागरिक आचरण, कर्तव्य और दायित्व आदि की वह प्रशंसा भी करता है ।

क्रांतिकारी, विनोदप्रिय, विद्वान, हंसोड़ आदि व्यक्ति-चरित्रों के साथ ही फक्कड़, मस्तमौला, मनमौजी चरित्रों के प्रति भी यायावर में एक आस्पद श्रद्धा भाव है । मानवतावादी बिंदुओं पर लेखक की उदात्त संवेदना और अंतरंग रागात्मकता रेखांकित होती है । `मानवता के जिन गुणों पर यह यायावर मुग्ध है आज के पर्यटक उन गुणों को अनदेखा करके निकल जाते हैं ।`[1] यात्रा

---

1. डा० ओमप्रकाश अवस्थी, अज्ञेय गद्य में, पृ० 114

अनिवार्यत: भौगोलिक परिवृत्ति और प्राकृतिक विस्तार में ही निष्पन्न होती है । अत: दोनों की समन्वित सत्ता यात्रा साहित्य की अन्तवर्ती विषय-वस्तु है । `आत्मकथा जैसे एक बिंदु पर इतिहास का स्पर्श करती है, उसी तरह यात्रा-संस्मरण का एक पक्ष भूगोल के आकर्षण से जुड़ा है ।`[1] अज्ञेय के यात्रा-साहित्य में प्राकृतिक सौन्दर्य उनके यायावर की कवि दृष्टि के रागात्मक परिपार्श्व में अभिव्यंजित है । `अरे यायावर रहेगा याद ?` प्राकृतिक वैविध्य की अनोखी झाँकी का बेजोड़ प्रमाण है ।

यात्रा को अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं के रूप में ग्रहण करने वाला यायावर सर्वसाधारण की अपेक्षाओं के अनुकूल स्थूल विवरणात्मकता में प्रवृत्त नहीं होता । वस्तुत: यात्रावृत्तकार की शैलीगत रोचकता और भावावेश से अभिसिंचित आत्मीयता के वातावरण में साधारण पाठक भी यायावर का साझीदार हो उठता है । अत: स्व-अभिरुचि के अनुकूल विवरणात्मक अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए यायावर कदापि उत्तरदायी नहीं । प्रधानत: जीवन और जगत की वास्तविक घटनाओं पर आधारित इन यात्रावृत्तों में स्वभावत: लेखक की वैयक्तिक दृष्टि अन्ततोगत्वा आ ही जाती है । वैयक्तिक दृष्टि के आलोक में प्रतिपादित अभिव्यंजनावाद पाश्चात्य आलोचना में एक निरपेक्ष संकल्पना के रूप में स्थापित तथ्य है । यात्रावृत्त में विवरणों के चयन से लेकर कथ्य, संवेदना और शैलीगत अभिव्यक्ति तक में लेखक की वैयक्तिक निष्ठा या आत्माभिव्यंजनावादी स्वर की क्रियमाणता विद्यमान रहती है । पर वैयक्तिक दृष्टि का रेखांकन यात्रावृत्तों में आत्यांतिक रूप में नहीं, अदृश्यमूलक

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपा० - हिंदी साहित्य, तृतीय खण्ड, डा० राम-स्वरूप चतुर्वेदी, अन्य गद्य रूप, पृ० 546

स्थिति में ही वर्तमान रहता है । लेखन की अतिरिक्त सजगता या घोर आत्माभिव्यंजनावादी आग्रह से कतिपय मर्मस्पर्शी स्थलों की धारावाहिकता भी क्षतिग्रस्त हुई है । पर इनके यात्रावृत्तों की समूची संघटनात्मक निष्पत्ति में आत्माभिव्यंजना के फलस्वरूप उत्पन्न आलोचनात्मक बिंदु तिरोहित हो गये हैं ।

अज्ञेय-साहित्य के अधिकांश में रेखांकित होने वाले अभिजातीय अनुशीलन के समानांतर ही उनके यात्रावृत्तों के भाषिक-विधान में भी एक औपचारिक सजगता वर्तमान है । पर अज्ञेय की संयमित और औपचारिक भाषा संबन्धी सजगता उनकी अभिव्यक्ति की आत्मीय और प्रवाहपूर्ण शैली को कहीं भी बोझिल नहीं होने देती । अज्ञेय के यहां भाषा, जो संस्कृति और जातीय अस्मिता के पहचान की मेरुदण्ड है, का अभिजातीय आलोक उनके यात्रा-वृत्तों के कलात्मक-उत्कर्ष के अनुकूल है ।

o

ग्रंथानुक्रमणिका

परिशिष्ट 'क'

आधार ग्रंथों की सूची

परिशिष्ट 'ख'

सहायक ग्रंथों की सूची

परिशिष्ट 'ग'

पत्रिकाओं की सूची

परिशिष्ट 'क'

आधार ग्रंथों की सूची

1.	अरे यायावर रहेगा याद ?	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, पाँचवां संस्करण - 1986
2.	एक बूंद सहसा उछली	भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन - नयी दिल्ली, तीसरा संस्करण - 1988
3.	कहां है द्वारका	राजपाल एण्ड सन्ज - दिल्ली, पहला संस्करण - 1982
4.	छाया का जंगल	सरस्वती विहार - दिल्ली, पहला संस्करण - 1984
5.	जन जनक जानकी (संपादित)	प्रभात प्रकाशन - दिल्ली, पहला संस्करण
6.	सब रंग और कुछ राग	नेशनल पब्लिशिंग हाउस - नयी दिल्ली, पहला संस्करण - 1982

परिशिष्ट `ख`

सहायक ग्रंथों की सूची

1. अज्ञेय, अद्यतन, सरस्वती विहार - दिल्ली, प्र० सं० 1977
2. अज्ञेय, आत्मनेपद, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन - नयी दिल्ली, द्वि० सं० 1971
3. अज्ञेय, आलवाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस - नयी दिल्ली, प्र० सं० 1977
4. अज्ञेय, धार और किनारे
5. अज्ञेय, भवन्ती, राजपाल एण्ड सन्ज - दिल्ली, प्र० सं० 1972
6. अज्ञेय, लिखि कागद कोरे, राजपाल एण्ड सन्ज - दिल्ली, प्र० सं० 1973
7. अज्ञेय, शेखर : एक जीवनी (भाग एक और भाग दो), नेशनल पब्लिशिंग हाउस - नयी दिल्ली, प्र० सं० 1984
8. अज्ञेय, स्मृति लेखा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्र० सं० 1986
9. अज्ञेय, सदानीरा (भाग एक और भाग दो), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र० सं० 1986
10. अज्ञेय, संवत्सर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस - नयी दिल्ली, द्वि० सं० 1989
11. अज्ञेय, स्रोत और सेतु, राजपाल एण्ड सन्ज - दिल्ली, प्र० सं० 1978
12. डा० ओम प्रकाश अवस्थी, अज्ञेय गद्य में, ग्रंथम प्रकाशन - कानपुर, प्र० सं० 1982
13. डा० कमलेश्वर शरण सहाय, हिंदी का संस्मरण साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन - वाराणसी

14. आचार्य डा० दुर्गाशंकर मिश्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन केन्द्र - लखनऊ, प्र० सं० 1984

15. डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा अन्य, संपादित - हिंदी साहित्य - भाग तीन, भारतीय हिंदी परिषद - प्रयाग, प्र० सं० 1969

16. डा० धीरेन्द्र वर्मा, संपादित - साहित्यकोश - भाग एक, ज्ञानमंडल लिमिटेड - वाराणसी, तृ० सं० 1985

17. प्रभाकर मिश्र, निबन्धकार अज्ञेय, वाणी प्रकाशन - नयी दिल्ली, प्र० सं० 1989

18. डा० मैनेजर पाण्डेय, साहित्य केसमाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी - चण्डीगढ़, प्र० सं० 1989

19. रमेशचन्द्र शाह, अज्ञेय, साहित्य अकादमी - दिल्ली, प्र० सं० 1990

20. डा० राम कमल राय, अज्ञेय : सृजन और संघर्ष, लोक भारती प्रकाशन - इलाहाबाद, प्र० सं० 1978

21. डा० रामकमल राय, शिखर से सागर तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस - नयी दिल्ली, प्र० सं० 1986

22. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन - नयी दिल्ली, तृ० सं० 1990

परिशिष्ट `ग`

पत्रिकाओं की सूची

1. आजकल, अंक - जून 1987, जुलाई 1987, दिल्ली
2. दिनमान, अंक - अप्रैल 12-18, 1987, दिल्ली
3. पूर्वग्रह, अंक - 92-93, भोपाल
4. रविवार, अंक - 46, दिल्ली
5. समकालीन भारतीय साहित्य, अंक - अप्रैल-जून 1986, जनवरी-मार्च, 1987 - दिल्ली
6. साप्ताहिक हिंदुस्तान, अंक - 30 अगस्त - 5 सितम्बर, 1992, दिल्ली
7. साक्षात्कार, अंक - मई-जून 1985, भोपाल ।

0